भारत में समावेशी शिक्षा और सामाजिक विविधता

दृष्टिकोण, चुनौतियां और प्रयोग

संपादन
संजय कुमार

भारत में समावेशी शिक्षा और सामाजिक विविधता

दृष्टिकोण, चुनौतियां और प्रयोग

संपादन

संजय कुमार

परिकल्पना, संयोजन एवं संपादन
संजय कुमार

अनुवाद
मंजीत ठाकुर, बिपेन्द्र

कॉपी संपादन
राधेश्याम मंगोलपुरी

लेआऊट डिजाइन एवं मुद्रण
सिस्टम्स विज़न

फोटो
सनद मिश्रा, गोपाल

आर्थिक अनुदान
पैक्स परियोजना के तहत
नोटः इसमें व्यक्त किए गए विचार लेखक-समूह और देशकाल सोसाइटी के हैं।

इस पुस्तक में संजय कुमार का अध्याय "भारत में समावेशी शिक्षाः मिथक और चुनौतियां" नेशनल रिपोर्ट ऑन इंक्लूसिव क्लास रूमः सोशल इंक्लूजन, एक्सक्लुजन एंड डाईवर्सिटी, देशकाल पब्लिकेशन, 2010 से लिया गया है।

इस पुस्तक में पी. डी. सिंह और संजय कुमार का अध्याय सेमिनार, अक्टूबर 2012 में प्रकाशित संस्कार का हिन्दी अनुवाद है।

इस पुस्तक में नीता कुमार का लेख 'साक्षरता नहीं, उत्कृष्टता' सेमिनार, अक्टूबर 2012 में प्रकाशित, 'नीड फॉर एक्सेलेशन नॉट लिटरेसी' का हिन्दी अनुवाद है।

इस पुस्तक में 'पढ़ाई का सकारात्मक एवं मददगार परिवेश बनाना' अध्याय 'पॉजिटिव डिसीप्लीन इन द इक्लूसिव लर्निंग, फ्रेंडली क्लास रूम' (ए गाईड फॉर टिचर्स एवं टीचर एजुकेशन, यूनेस्को 2006) का हिंदी अनुवाद है।

परामर्श-मंडल
प्रो. इम्तियाज अहमद (अध्यक्ष, देशकाल सोसाइटी एवं भूतपूर्व प्रोफेसर, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली)
प्रो. गिरीश्वर मिश्रा (कुलपति, महात्मा गांधी हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा)
श्यौराज सिंह बेचैन (प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)
अरविंद मिश्रा (सहायक प्रोफेसर, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली)
अरविंद मोहन (वरिष्ठ पत्रकार एवं राजनीतिक विश्लेषक)

© देशकाल पब्लिकेशन

प्रथम संस्करण, जून 2014

प्रकाशक
देशकाल पब्लिकेशन
205, इंदिरा विहार, दिल्ली-110 009
टेलिफैक्सः 011-27654895 • ई-मेलः deshkal@gmail.com

इस पुस्तक में छपी सामग्री का पुनः प्रकाशन देशकाल पब्लिकेशन की अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता है और न ही इसकी सामग्री किसी भी रूप में उपयोग में लाई जा सकती है।

भूमिका

शिक्षा के विमर्श में यह एक आम धारणा है कि शिक्षा समाज का विस्तार है। भारतीय समाज की बहुलता और विविधता से अलग भारतीय स्कूल नहीं हैं। शिक्षा के क्षेत्र में यह एक सकारात्मक प्रवृत्ति हाल के दशक में उभरी है कि भारत के स्कूलों में बीसवीं सदी की तुलना में विभिन्न जातियों, वर्गों, धर्मों से आए बच्चों की तादाद गुणात्मक तरीकों से बढ़ी है। लेकिन भारतीय स्कूलों का यह एक पक्ष है। जैसे ही इसके दूसरे पक्ष का आंकलन करते हैं तो स्कूलों और कक्षा के भीतर पठन-पाठन की प्रक्रिया में गहरे तौर पर कई मिथक प्रचलित पाते हैं। मसलन,

मिथक 1 : बच्चे तो आखिरकार बच्चे हैं..... सब एक जैसे हैं।

मिथक 2 : बच्चों की शैक्षिक उपलब्धियां वंशानुगत रूप से तय होती हैं।

मिथक 3 : स्कूली बच्चे सड़क के बच्चों से अलग होते हैं।

मिथक 4 : लड़कों के लिए पढ़ाई, लड़कियों के लिए ब्याह।

मिथक 5 : बच्चे सिर्फ पाठ्यपुस्तकों के जरिए शिक्षकों से कक्षा में पढ़ते हैं।

मिथक 6 : सभी बच्चों का स्कूल में दाखिला कराना ही सर्वशिक्षा है।

स्पष्ट है, इस तरह की प्रचलित धारणाएं स्कूलों और कक्षाओं में समाज के कमजोर वर्गों और समुदायों के बच्चों के मानस पर न केवल गंभीर असर डालती हैं बल्कि प्रायः ऐसी स्थितियां बन जाती हैं कि बच्चे स्कूल में होते हुए भी पढ़ने-लिखने की प्रक्रिया से खुद को अलग कर लेते हैं या थोड़े ही वर्षों में स्कूल से बाहर हो जाते हैं। इस तरह हमारे भारतीय स्कूलों में ये धारणाएं उन बुनियादी सवालों से टकराती हुई दिखती हैं जिन पर गंभीरता से विचार किए बिना, सफल कार्यक्रम और रणनीति बनाए बिना हम वो स्कूल निर्मित नहीं कर सकते हैं, जहां बच्चे, खासतौर से अलग-अलग सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से आए बच्चे, समावेशी शिक्षा का उत्कृष्ट माहौल और आनंद ले सकें। वे सवाल हैं –

बच्चों की अलग-अलग संस्कृति एवं सामाजिक-आर्थिक स्थितियों के प्रति संवेदनशील पठन-पाठन के तरीके एवं पठन-पाठन की सामग्रियां किस तरह विकसित की जाएं जो उनकी पढ़ाई की विभिन्न जरूरतों को पूरा करने एवं उनके अवरोधों को दूर करने में सक्षम हों? बच्चों के जीवन के अनुभवों तथा वे जिस सामाजिक-आर्थिक, सांस्कृतिक परिवेश में रहते और पढ़ते हैं, उससे जुड़ा हुआ स्कूली पाठ्यक्रम किस तरह विकसित किया जाए? बच्चों द्वारा अपने घर एवं सामुदायिक परिवेश में हासिल की गई जानकारी, अनुभवों के आधार पर पढ़ाने का तरीका कैसे विकसित किया जाए? बच्चों की पढ़ाई की उपलब्धियों को बढ़ाने के लिए बच्चों की अलग-अलग सांस्कृतिक एवं सामाजिक-आर्थिक परिवेश का इस्तेमाल संसाधन-स्रोत के आधार के तौर पर कैसे किया जाए? स्कूल एवं क्लासरूम के कामकाज को किस तरह ऐसा बनाया जाए और विकसित किया जाए कि अपनी

पढ़ाई की बेहतरी के लिए बच्चों की घर पर निर्भरता कम हो सके? परिवेश-विशेष पर आधारित शिक्षक विकास कार्यक्रम किस तरह विकसित किया जाए जिससे शिक्षक सामाजिक विविधता एवं क्लासरूम में भेदभाव के बारे में अपनी समझ को बढ़ा सकें तथा क्लासरूम की वास्तविक स्थितियों में पठन-पाठन के बारे में अपनी इस समझ को लागू करने के लिए अपनी पेशेवर दक्षता बढ़ा सकें?

इस संकलन के शुरू के तीन आलेख – क्रमशः संजय कुमार, पी. डी. सिंह और ज्ञानदेव मणि त्रिपाठी के आलेख उन सवालों के स्वरूप और उनकी वजहों की गहरी जांच-पड़ताल करते हैं। इस कड़ी में उसके बाद का आलेख नीता कुमार का और 'पढ़ाई का सकारात्मक एवं मददगार परिवेश बनाना' वाला अध्याय उस प्रयोग की जमीन मुहैया कराते हैं जिससे यह विश्वास बनता है कि विभिन्न सामाजिक पृष्ठभूमि से आए बच्चों के लिए आनंददायी और उत्कृष्ट शिक्षा मिल सकती है।

इन सवालों के परिप्रेक्ष्य में यहां नीता कुमार का यह वक्तत्व इस विश्वास को मजबूत करता है कि समावेशी शिक्षा भारतीय स्कूलों में चुनौतीपूर्ण तो है लेकिन संभव है। अपने इस आलेख में वह कहती हैं कि "इसमें दोहरी प्रतिबद्धता की जरूरत है। एक उत्तर औपनिवेशिक सजगता विकसित करना कि सारे भारतीय एक हैं, और हमारे सभी बच्चों को एक जैसे विशेषाधिकारों के तहत धनी-मानी घरों के बच्चों की तरह ही उम्दा तालीम हासिल करने का हक है। और दूसरा तकनीक का विकास करना – उपकरण, संसाधन, शिक्षण का तरीका, शिक्षक – जिससे उत्कृष्ट शिक्षा को ज़मीन पर व्यवहार में उतार सकें। समावेशी शिक्षा को मूर्तरूप देने की व्यावहारिक प्रक्रिया और एक स्तर पर समाधान की समझ इस पुस्तक के अंतिम अध्याय "पढ़ाई का सकारात्मक एवं मददगार परिवेश बनाना" में मिलता है। इस आलेख में कक्षा के भीतर पठन-पाठन की प्रक्रिया को आनंददायी और समावेशी बनाने के लिए उन बिंदुओं को रचनात्मक तरीके से प्रस्तुत किया गया है। वे बिंदु निम्न हैं –

1. कक्षा प्रबंधन का महत्व
2. शिक्षण परिवेश को सुविधाजनक बनाना
3. कक्षा कार्यक्रम तैयार करना
4. अच्छे आचरण के निर्माण के अनुकूल प्रबंधन शैली अपनाना
5. कक्षा के नियम बनाना एवं अभिभावक को संलग्न करना
6. सकारात्मक मजबूती उपलब्ध कराना

समावेशी शिक्षा के लिए विचार और व्यवहार के स्तर पर जुटे तमाम शिक्षाकर्मी, एडुकेटर, शिक्षक, प्रशिक्षक, प्रशिक्षु और शैक्षिक प्रशासक के लिए यह पुस्तक एक मार्गदर्शिका का काम करेगी। कक्षाओं और स्कूलों की वर्तमान चुनौतीपूर्ण स्थितियों और समस्याओं से जूझने में अगर यह पुस्तक थोड़ी मदद कर पाती है तो समावेशी शिक्षा की तरफ बढ़ने का यह पहला कदम होगा।

विषयवस्तु

भूमिका iii

भारत में समावेशी शिक्षा : मिथक और चुनौतियां 1

संस्कार 21

शिक्षा की ललक 29

साक्षरता नहीं, उत्कृष्टता 35

पढ़ाई का सकारात्मक एवं मददगार परिवेश बनाना 45

भारत में समावेशी शिक्षा मिथक और चुनौतियां

संजय कुमार

आज प्राथमिक कक्षाओं में विविध पृष्ठभूमियों के शिक्षार्थियों की बढ़ती संख्या ने स्कूलों को ज्यादा समावेशी बनने के महत्व को बढ़ा दिया है। प्रतिभाओं में बहुत भिन्नताओं और छात्रों की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक काफी बड़ी भिन्नताओं की वजह से भारत में प्राथमिक कक्षाओं के सामने इस विविधता का सामना करने की बड़ी चुनौती है, ताकि वह इसका रचनात्मक इस्तेमाल कर सके, अध्ययन-अध्यापन की प्रक्रिया और उसके अनुप्रयोग को ज्यादा लोकतांत्रिक बनाया जा सके और इसके जरिए सामाजिक न्याय के वृहत्तर उद्देश्य को हासिल किया जा सके।

इस संदर्भ में, समावेशी शिक्षा के उद्देश्य को महत्व हासिल होता है। बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा के अधिकार अधिनियम, 2009 से इसे और प्रोत्साहन मिला है। इस अधिनियम के लागू होने को तभी सफल माना जा सकता है जब इसके जरिए वंचित तबके के बच्चों को कक्षा की चहारदीवारी के भीतर लाया जा सकेगा। देश भर में इनमें से बहुत से बच्चे अनुसूचित जाति (अजा), अनुसूचित जनजाति (अजजा), आदिवासी और धार्मिक अल्पसंख्यक समूह, आर्थिक रूप से कमजोर (ईडब्ल्यूएस) तबके, प्रवासी मजदूर, खानाबदोश और गैर-अधिसूचित कबीले, शहरी गरीब, विशेष जरूरतों वाले बच्चे (सीडब्ल्यूएसएन) जैसे सामाजिक रूप से शोषित तबकों के हैं। हालांकि, इन समुदायों के बच्चे स्कूलों में दाखिला ले चुके हैं, लेकिन असली खतरा उनके बीच में पढ़ाई छोड़ने का है। इनमें से ज्यादातर सामाजार्थिक रूप से बेहद जोखिम-भरे माहौल में रहते हैं और उनके सामने उनके स्कूली शिक्षा जैसे अधिकारों को लेकर गंभीर खतरा है। छात्र के दृष्टिकोण से देखें तो शिक्षा का अधिकार, 2009 स्कूलों में दाखिले, उपस्थिति और शिक्षा पूरी करने को अनिवार्य बनाने के लिए कानूनी संरचना प्रदान करता है।

> **अपने बच्चों की भलाई की इच्छा मानव-जाति की सार्वभौम आकांक्षा रही है।**
>
> – कोफी अन्नान,
> वी द चिल्ड्रन में, यूनिसेफ,
> जून 2001

हालांकि, भौतिक रूप से पहुंच की बड़े पैमाने पर चिंता की जा रही है, लेकिन यह सार्वभौम पहुंच को सुनिश्चित करने के लिहाज से पर्याप्त नहीं है। दरअसल, अब महत्व स्कूली शिक्षा को विविध शिक्षार्थियों के लिए चिंता, भय और तनाव से मुक्त बनाने का है। इस संदर्भ में, अध्ययन-अध्यापन प्रक्रियाओं और रीतियों की गुणवत्ता ने प्राथमिक शिक्षा से जुड़े हर हिस्सेदार का ध्यान अपनी तरफ खींचा है। अब यह तथ्य सर्वविदित है कि वंचित तबके के बच्चों और सामान्य समुदाय के बच्चों के बीच उपलब्धियों की एक खाई मौजूद है। इस मसले के केन्द्र में है स्कूली शिक्षा में शिक्षकों और अध्यापन-विधियों को 'दबाव रहित' और 'छात्र-हितैषी' बनाने का वह विचार जिसने हालिया वक्त में बहसों में अपनी जगह बनाई है। (भारत सरकार, 2009, पृष्ठ 9)

वास्तव में, हाल के दशकों में, विभिन्न अध्ययनों, रिपोर्टों और दस्तावेजों से यह बात सामने आई है कि भारत की मौजूदा मुख्यधारा के सरकारी स्कूलों में कक्षाओं, पाठ्यक्रम और शिक्षण के तरीके में, बच्चों – खासकर वंचित तबके के बच्चों – के साथ विभिन्न प्रकार से भेदभाव होता है। अपमानजनक परिस्थितियां और भेदभाव उनके

आत्मसम्मान और आत्मविश्वास पर गंभीर चोट पहुंचाती हैं। बच्चों ने कक्षा में अपने साथ हुए दर्दनाक वाकये बताए हैं, और इसके और शिक्षकों के खिलाफ अपना विरोध भी दर्ज कराया है। (जांच रिपोर्ट, 1999, नामबिशन, 2001, गोविन्दा, 2002) कुछ बच्चों के साथ तो शिक्षकों द्वारा हिंसक घटनाएं भी हुईं और इनमें कई बार दबंग जातियों के उनके सहपाठी भी शामिल थे। द्रेज और गाजदार (1996) द्वारा उत्तर प्रदेश के स्कूलों में किए गए एक अध्ययन के मुताबिक, शिक्षकों ने अजा छात्रों को पढ़ाने से इनकार कर दिया था। शिक्षक मौखिक रूप से बदतमीजी से बातें करते और उन्हें शारीरिक दंड दिया जाता, अगड़ी जाति के सहपाठियों के हाथों पिटाई भी आम बात थी।

शिक्षक-आधारित रीतियों की पहचान करते हुए शिक्षा का अधिकार कानून ने बच्चों को ज्ञान का अप्रत्यक्ष प्राप्तकर्ता मानने की सामान्य अवधारणा को बदलने को बाध्यकारी बना दिया है। साथ ही इस कानून में पाठ्यपुस्तकों का इस्तेमाल परीक्षा के आधार के तौर पर किए जाने की परंपरा से आगे जाने को कहा गया है। प्राथमिक शिक्षा को कानूनी रूप से अनिवार्य बनाने के मुद्दे से आगे बढ़ते हुए यह कानून शिक्षा-विज्ञान के उन कारकों की बात करता है, जो सबके लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मुहैया कराने के संदर्भ में शिक्षार्थियों – खासकर वंचित तबके से ताल्लुक रखने वाले बच्चों – को व्यापक और नियमित प्राथमिक शिक्षा हासिल करने से रोकता है। अधिनियम के अनुसार पाठ्यक्रम को कार्यकलापों, अन्वेषणों और खोजों के जरिए शिक्षा देने की कोशिश करनी चाहिए। यह कक्षा में शिक्षक-आधारित सुधारों पर जोर देता है ताकि कक्षा में छात्र-हितैषी वातावरण नहीं बन पाने की दशा में शिक्षकों को जिम्मेदार ठहराया जा सके। यही नहीं, यह सभी शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं के अनुरूप नए स्वरूप की मूल्यांकन-प्रणाली की एक परीक्षा पर जोर देता है।

इसी तरह, कुछ साल पहले, राष्ट्रीय पाठ्यक्रम फ्रेमवर्क (एनसीएफ) 2005 ने भी 'बाल-हितैषी' अध्यापन सीखने के मसले को हल करने की कोशिश की थी। एनसीएफ, 2005 ने इस बात पर गौर किया कि पढ़ाई एक बोझ बन गया है और यह बच्चों और उनके अभिभावकों पर बहुत ज्यादा दबाव डालने लगा है। इस बात का सबूत शैक्षिक उद्देश्यों और गुणवत्ता में आए बदलाव में मिल जाता है। एनसीएफ 2005 ने शिक्षा-विज्ञान, पाठ्यक्रम, अध्यापन-अध्ययन सामग्री और

बॉक्स 1.1

पढ़ना मेरा अधिकार

रॉबर्ट प्राउटी

मांगूंगा नहीं,
पढ़ना है मेरा अधिकार,
मेरा अधिकार

अगर कानून में हो खामी
अगर नीतियों में हो छेद
और, दूरदराज में जाने कितनी जगहें हैं,
अब भी जाने कितने हैं लोग
जिनको नहीं परवाह –
अगर यही सब हैं वजहें
मेरे लिए, मेरी कक्षा के द्वारा
जहां हो कोई जो पढ़ाए मुझे
अब भी मेरी पहुंच के पार
अब भी मेरी आंखों से दूर

लेकिन इस गलती से कम न होगा मेरा अधिकार

इसीलिए यहां हूं... मैं भी
मैं हूं तुममें से एक
और मुझ पर भी है ईश्वर की कृपा
मैं खुद खोज लूंगा मंजिल
नहीं मिले हम
नहीं जानते तुम मुझको अब भी
इसीलिए नहीं जानते
कि मैं दूंगा बहुत कुछ प्रतिदान
भविष्य है मेरा ही नाम

मेरा अधिकार है पढ़ना, दावा है मेरा

–यूनिसेफ और यूनेस्को में उद्धृत, 2007
ह्यूमनराइट बेस्ड अप्रोच फॉर एजुकेशन टू ऑल: ए फ्रेमवर्क फॉर द रियलाइजेशन ऑफ चिल्ड्रंस राइट टू एजुकेशन एंड राइट्स विदइन एजुकेशन, पैरिस।

बॉक्स 1.2

एक समावेशी स्कूल

रॉबर्ट प्राउटी

समावेशी स्कूल का बुनियादी सिद्धांत है कि जितना मुमकिन हो सके, सभी बच्चों को एक साथ पढ़ाया जाए, चाहे कितनी भी मुश्किलें आएं या उनके बीच कितना ही अंतर क्यों न हो। समावेशी स्कूलों को अपने छात्रों की विभिन्न जरूरतों को पहचानना होगा और उसके लिहाज से काम करना होगा, जिसमें सीखने के विभिन्न तरीकों और दर के साथ समन्वय करना होगा और यह सुनिश्चित करना होगा कि हर बच्चे को समुचित पाठ्यक्रम, संस्थागत व्यवस्था, अध्यापन की रणनीतियों, संसाधनों के इस्तेमाल और समुदायों के साथ साझेदारियों के जरिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा हासिल हो सके। इस सहयोग और सेवा में एक निरंतरता होनी चाहिए ताकि हर स्कूल की विशेष आवश्यकताओं के लिहाज से भी निरंतरता बनी रहे।

–सालामांका फ्रेमवर्क फॉर एक्शन, 1994

कक्षा तथा स्कूली वातावरण के लिए प्रेक्षणों और सुझावों की एक शृंखला तैयार की थी। इसके मुताबिक –

> कक्षाओं में बच्चों की इच्छा और अनुभवों को तरजीह नहीं मिलती ..... पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो बच्चों की इच्छा को उचित आवाज दे, कुछ करने की उनकी जिज्ञासा को जगाए, उनको सवाल पूछने, जांचने और अपने अनुभवों को स्कूल के साथ बांटने के लिए प्रोत्साहित करे; न कि सिर्फ पाठ्यपुस्तकों से मिले ज्ञान को रटे।

ऐसे में एनसीएफ 2005 ने बालकेन्द्रित शिक्षा-विज्ञान की सिफारिश की, जिसमें बच्चों के अनुभवों, उनकी इच्छाओं और उनकी सक्रिय भागीदारी को प्राथमिकता दी जाए। पाठ्यक्रम फ्रेमवर्क ने यह टिप्पणी की :

> शिक्षार्थियों पर यह परिप्रेक्ष्य संभवतः 'स्पष्ट' लगे, लेकिन वास्तव में, कई शिक्षकों, मूल्यांकन-कर्ताओं और पाठ्य पुस्तक लेखकों में अभी भी इस बात का भरोसा नहीं है कि यह एक वास्तविकता बन सकता है।

यह भी देखा गया है कि कई स्कूलों में अब पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी हैं, जिनके माता-पिता स्कूली शिक्षा में उन्हें प्रत्यक्ष समर्थन नहीं दे सकते, और इसलिए अध्यापन को उनकी स्कूली शिक्षा की जरूरतों को पूरा करने के लिए पुनर्भिविन्यासित किया जाना चाहिए।

वास्तव में, टीचर एजुकेशन (एनसीएफटीई), 2009 में हाल ही में जारी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा में भारत में प्राथमिक शिक्षा की बदली हुई परिस्थितियों में शिक्षक आधारित रीतियों से और अधिक दृढ़ता से निपटने की आवश्यकता पर भी जोर दिया गया है :

> वास्तविकता ज्यादा कठिनाइयों से भरी है। क्षेत्रीय, सामाजिक और लैंगिक असमानताएं नई चुनौतियां खड़ी कर रही हैं। यह वास्तविकता बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के अधिकार अधिनियम को लागू करने और, विशेष रूप से, स्कूल शिक्षक की भूमिका और उनकी स्थिति के बारे में चुनौतियों को बढ़ा रही है। (पृ. 2)

एनसीटीई, 2009 ने प्राथमिक कक्षाओं में विविध शिक्षार्थियों की संख्या में हुई बढ़ोतरी के संदर्भ में शिक्षक शिक्षा में सुधार को गंभीरता से लिया है। यह समय की जरूरत के लिहाज से अध्यापक शिक्षण ढांचे की अवधारणा प्रस्तुत करता है :

> शिक्षण के पुनर्नवीकरण और सीखने के एक स्रोत के रूप में सामाजिक संदर्भ की संभावना और मूल्य की मान्यता बढ़ती जा रही है। बहु-सांस्कृतिक शिक्षा और विविधता के लिए शिक्षण चुनाव आज की जरूरत है। (पृ. 19)

शिक्षक शिक्षण पाठ्यक्रम के विकास के संदर्भ से जुड़े मसलों की पहचान करते हुए इस दस्तावेज में सकारात्मक दृष्टिकोण, मूल्यों और नजरिए वाले शिक्षकों का विकास करने पर जोर है। शिक्षक शिक्षण पाठ्यक्रमों को बदलते वक्त की जरूरत के लिहाज से विकसित करना और अध्यापन की कला को विकसित करने पर भी इसका जोर है।

इतने गंभीर प्रयासों के बावजूद यह तथ्य है कि वंचित तबके के बच्चों और छात्राएं स्कूलों में लगातार 'कम उपलब्धियों' की श्रेणी में हैं। वास्तव में, भारत ही नहीं, वैश्विक स्तर पर भी वंचित समुदायों के बच्चों को पढ़ाने की मौजूदा रणनीति पर गंभीर सवाल हैं। (यूनेस्को, 2003)

यहां एक महत्वपूर्ण पहलू उल्लेखनीय है कि हाशिए पर पड़े समुदायों के बच्चों के खराब प्रदर्शन को मौजूदा बहसों में 'तकनीकी समस्या' माना जाता है। यानी, मौजूदा बहस वंचित तबकों के बच्चों के ऐतिहासिक रूप से खराब प्रदर्शन को अपर्याप्त और खामियों-भरी शिक्षण-अध्ययन विधियों और प्रक्रियाओं से जोड़कर देखा जाता है। बहरहाल, समस्या को इस तरह पेश किए जाने का मतलब है कि इस मसले का एकमात्र हल 'उपयुक्त अध्यापन विधियों' या 'सर्वश्रेष्ठ विधियों' की खोज है। यह इस मुद्दे की मूल रूप से गलत व्याख्या है और इससे समस्या आज घनीभूत ही हुई है। परिणामतः शैक्षिक तिकड़म खोजने में ही बहुत सारा वक्त बर्बाद किया जा चुका है। शायद, एक गंभीर और जड़ों तक लगी समस्या के समाधान के लिए हम बस सतह कुरेदते रहे हैं।

मौजूदा मिथक

खराब प्रदर्शन करने वाले शिक्षार्थियों के सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान और योग्यताओं के प्रति शिक्षकों, स्कूल पदाधिकारियों और हम सबों द्वारा आमतौर पर अपनाया गया भेदभावपूर्ण व्यवहार समस्यामूलक मान्यताएं हैं। इनमें से कुछ बच्चों की व्यक्तिगत और सामूहिक पहचान और उनकी क्षमता के बारे में सर्वव्यापी विश्वासों और आम धारणाओं से संबंधित हैं। यह प्रायः विभिन्न सामाजार्थिक संदर्भों से जुड़े और उसकी वजह से वजूद में आए होते हैं। ये संदर्भ खुलेआम तो नहीं होते, लेकिन उन सबकी समझ में आते हैं जो विभिन्न सामाजिक परंपराओं में विश्वास रखते हैं।

समावेशन क्या है	समावेशन क्या नहीं है
....विविधता का स्वागत	....सिर्फ विशेष शिक्षा का सुधार नहीं, बल्कि औपचारिक और अनौपचारिक, दोनों शिक्षा-व्यवस्थाओं में सुधार
....सिर्फ छूट गए पर ध्यान नहीं, सभी सीखने वालों को फायदा	....सिर्फ विविधता पर ध्यान नहीं, बल्कि सभी सीखने वालों के लिहाज से शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारना
....स्कूलों में बच्चे खुद को छूटा हुआ मान सकते हैं	....विशेष स्कूल नहीं बल्कि नियमित स्कूलों के तहत ही छात्रों को अतिरिक्त सहायता देना
.....शिक्षा तक सबकी बराबर पहुंच बनाना या कुछ छात्रों को बिना बाहर किए उनके विशेष वर्ग बनाना	....शारीरिक रूप से, विशेष रूप से, सक्षम बच्चों की जरूरतों को पूरा करना एक बच्चे की जरूरत को दूसरे बच्चे की कीमत पर पूरा करना है।

सौजन्य यूनेस्को, 2005, *गाइडलाइन्स फॉर इनक्लूजन*, पैरिस

मिथक 1 : बच्चे तो आखिरकार बच्चे हैं ..... सब एक जैसे हैं।

नहीं। बच्चों के विविध और बहुआयामी पहचान होते हैं। लेकिन बच्चे एक जैसे क्यों दिखते हैं? स्कूल में बच्चों को उनकी स्कूली पोशाक के साथ कल्पना कीजिए। क्या सब एक जैसे नहीं दिखते? वास्तव में सब एक जैसे ही दिखते हैं, न सिर्फ दिखने में, बल्कि उनके बारे में कुछ दृष्टिकोण के संदर्भ में भी। सामान्य तौर पर, बच्चे की बात करते ही खिलदंडेपन, मासूमियत, शुद्धता, अच्छाई और सरलता जैसी विशेषताएं सामने आ जाती हैं। एक बच्चा आखिरकार बच्चा ही होता है। अतएव, सभी बच्चों को सीधे तौर पर एक आम पहचान से जोड़ दिया जाता है। मिसाल के तौर पर, मोहित का मामला लीजिए। मोहित भल्ला कक्षा 9 का छात्र है और 14 साल का है। वह दिल्ली में पैदा हुआ और वह एक मध्यवर्गीय हाउसिंग कॉलोनी में रहता है। जिन बच्चों के साथ वह खेलता है, वे सब अलग-अलग स्कूलों के हैं और वह उन सबों के साथ सहज रहता है। लेकिन, वह उन्हें महज खेल का साथी मानता है और वह अपनी समस्याओं पर उनके साथ चर्चा नहीं करता।

मोहित चाहता है कि वह बड़ा होकर पायलट बने: "पायलट बनकर मैं देश के दुश्मनों को खत्म कर दूंगा और फिर किसी तरह की घुसपैठ नहीं होगी।" पाकिस्तानी नागरिकों की घुसपैठ मोहित को बहुत बड़ी समस्या लगती है। वह बार-बार दोहराता है कि वह सरहद पार के अविश्वसनीय पड़ोसी से अपने राष्ट्र को बचाना चाहता है। क्रिकेटर बनना दूसरा पसंदीदा काम है: ''अच्छा खेलकर मैं भारत को जिताना चाहता हूं.... मैं पूरे भारत का नक्शा बदल दूंगा।'' अपने परिवार के लोगों के साथ उसकी बातचीत कम ही होती है और यह तभी होती है जब रात के खाने पर सभी साथ

होते हैं। उस वक्त घर के लोग उसके स्कूल, दोस्तों और अध्यापकों के बारे में बात करते हैं। स्कूल की 'हवन' और अन्य धार्मिक कर्मकांडों वगैरह की परंपराओं के उलट मोहित बाहरी धार्मिकता में यकीन नहीं रखता और कहता है, ''मन ही मंदिर है। मेरी मां हर मंगलवार को मुझे हनुमान मंदिर जाने को कहती है, लेकिन निजी तौर पर मुझे लगता है कि अगर हम मंदिर न जाएं और मौन रहकर ही ईश्वर को याद करें तो भी वह सुन लेगा।'' मोहित ने दो बार हवन में हिस्सा लिया है, ''मैं बैठा रहता था क्योंकि मुझे ऐसा करने को कहा गया था।''

मोहित जब दिल्ली के सिनेमाघरों में हुए धमाकों के बारे में बात करता है तो उसके विचारों में हिन्दू और मुसलमानों की चर्चा हमेशा भारत और पाकिस्तान के संदर्भ में ही होती है। दिलचस्प रूप से, अखबारों में बाद में खबर आई कि इस घटना के पीछे पंजाब के आतंकियों का हाथ था। लेकिन इससे मोहित के कट्टर विचारों पर कोई फर्क नहीं पड़ा: "हां, मुझे इस घटना के बारे में टीवी पर खबरें मालूम हुईं। यह सिर्फ इसलिए हो रहा है क्योंकि हमने पाकिस्तान के साथ बस सेवा की अनुमति दे रखी है। और अब वे लोग कह रहे हैं कि भारत और पाकिस्तान के बीच एक ट्रेन सेवा शुरू होगी। इससे तो आतंकवादियों के लिए भारत में घुसपैठ करना आसान हो जाएगा। रोज अखबारों में छपता है कि पाकिस्तानी घुसपैठिए भारत में पकड़े गए हैं। देश की सीमाओं पर कड़ी चौकसी होनी चाहिए, वरना एक बार फिर देश में मुस्लिम शासन हो जाएगा।"[1] मोहित की यह बात इसी तथ्य को प्रतिबिम्बित करती है कि एक ओर कक्षा के विविध शिक्षार्थी शिक्षक की नजर में एक जैसे होते हैं, लेकिन उनकी इस सामान्य पहचान के पीछे एक 'बच्चा' भी होता है, और हर शिक्षार्थी की एक अंतर-वैयक्तिक और सामूहिक पहचान भी होती है। यह पानी की सतह पर तैरते बर्फ सरीखा ही है, जहां बर्फ का ज्यादातर हिस्सा पानी के नीचे ही रहता है। किसी छात्र की निजी या सामूहिक पहचान उसकी सामाजार्थिक और सांस्कृतिक परिवेश के मुताबिक ही बनती है। मिसाल के लिए, भारत में वह सामाजार्थिक और सांस्कृतिक परिवेश जिसमें एक दलित बच्चा बड़ा होता है वह किसी शहरी भारत के किसी कुलीन स्कूल में पढ़ रहे मुख्यधारा के बच्चे के परिवेश से बिल्कुल अलहदा होगा।

बाल-विकास के संदर्भ में आज की विचारधारा इस बात को भी रेखांकित करती है कि किसी बच्चे की पहचान एक जटिल चीज है। बच्चे शुरुआती उम्र में ही अपने आसपास की सामाजिक सच्चाइयों को सीखना शुरू कर देते हैं। मोटे तौर पर इसी बात का असर पड़ता है कि वह खुद को और दूसरों को कैसे देखता है। इस दृष्टिकोण से, जैसा कि आम ख्याल है बच्चे सिर्फ खाली बरतन ही नहीं होते, उनकी 'सामाजिक' पहचान और उनकी निजी और सामूहिक पहचान के बारे में उनकी सचेतता उनके स्कूल में आने से बहुत पहले बन चुकी होती है।

बहरहाल, यह देखा गया है कि शिक्षार्थियों के बारे में मुख्यधारा का दृष्टिकोण बच्चों को पढ़ाने वालों में से ज्यादातर की राय होती है। यह दृष्टिकोण उन लोगों में ज्यादा है, जिनके आसपास ही ज्यादातर छात्र बड़े इन छात्रों के आसपास के लोग जिस तरह से उनके साथ व्यवहार करते हैं, उससे मोटे तौर पर यह अंदाजा हो जाता है कि उनसे कैसे दिखने, दूसरों के साथ व्यवहार करने और उत्तर देने, खासकर कक्षा में, की उम्मीद करते हैं।

छात्रों की पहचान और उनकी वास्तविक 'सामाजिक स्व' की स्थिति के बीच सामान्य धारणा में इतनी गहरी खाई है कि कभी-कभी तो कक्षा में किसी किस्म की चर्चा करना मुश्किल हो जाता है। मिसाल के लिए, झांसी के ज्ञानस्थली पब्लिक स्कूल में एक शिक्षिका को 9/11 की घटना के बाद कक्षा में इतिहास की पाठ्यपुस्तक पढ़ाने में बहुत मुश्किल होने लगी। (चितालकर, 2007)[2] स्कूल के बच्चे समाज के वंचित तबके से थे – अनुसूचित जाति और ओबीसी से। स्कूल में मुस्लिम बच्चे 1:10 के अनुपात में थे, यानी 40 बच्चों की कक्षा में सिर्फ 4 बच्चे।

किताब के अध्याय धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे और उनको पढ़ाने में मजा आ रहा था, लेकिन तभी तक, जब तक भारत की आजादी के संघर्ष का अध्याय शुरू नहीं हुआ, खासकर कक्षा 10 में एनसीईआरटी की किताब में मुस्लिम लीग और सांप्रदायिकता का अध्याय। छात्रों के मन में अपहृत विमानों के जुड़वां टावरों से टकराने की मीडिया छवियां ताजा थीं, और यह कक्षा में चर्चा का केन्द्र-बिन्दु बन गया। 'सांप्रदायिकता' और 'बंटवारे' शब्द का इस्तेमाल कक्षा में मुस्लिम बच्चों को पछाड़ने के लिए किया जाता था। ''वे लोग हत्यारे हैं'' गैर-मुस्लिम छात्रों का कहना था। गुजरात दंगों पर शिक्षकों की टिप्पणी थी : ''वे उसी लायक थे।''

इतिहास की हर कक्षा बहसबाजियों में तब्दील हो जाती थी, और पूरी आशंका थी कि यह मार-पीट में बदल न जाए, कक्षा के बाहर के मसले वास्तविक लगने लगे थे। इस मसले पर मध्यस्थ की भूमिका में शिक्षिका के आने पर गैर-मुस्लिम छात्र कहते, ''मैडम, क्या आप मुस्लिम हैं?'' आखिरकार, शिक्षिका ने उस अध्याय को पढ़ाना छोड़ देने का फैसला किया, क्योंकि अपने स्तर पर बहुतेरी कोशिशों के बाद भी छात्रों के बीच यह मसला सुलझ नहीं पा रहा था। यह पूर्वाग्रह काफी गहरे धंसा हुआ था और स्कूल पदाधिकारी इस मसले में कोई दिलचस्पी नहीं रखते थे और ना ही वह ऐसी स्थिति का सामना करने के लिए तैयार ही थे। शांति तभी आ पाई, जब शिक्षिका ने पाठ्यक्रम के भूगोल वाले हिस्से को पढ़ाना शुरू कर दिया।

यह उदाहरण बताता है कि 'सभी बच्चे समान है' का मिथक झूठ है और बच्चे न सिर्फ अपनी निजी पहचान और अनुभवों के साथ स्कूल आते हैं बल्कि उनके भीतर सामूहिक सजगता और पहचान भी होती है।

मिथक 2: बच्चों की शैक्षिक उपलब्धियां वंशानुगत रूप से तय होती हैं।

नहीं। बच्चों की शैक्षिक उपलब्धियां किसी भी मायने में वंशानुगत नहीं होतीं। शिक्षकों और स्कूल पदाधिकारियों के बीच विभिन्न पृष्ठभूमियों से आए छात्रों की सीखने की क्षमता को लेकर पूर्वाग्रह हैं। पूरे भारत में प्राथमिक स्कूलों में बच्चों के सामाजिक अनुभव इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं। ऐसे विचार प्रायः जाति, वर्ग, धर्म, समुदाय और भाषा संबंधी पूर्वाग्रहों-दुराग्रहों पर आधारित हैं।

वंचित तबके के बच्चों का खराब प्रदर्शन और उनके और सामान्य तबके के बच्चों के बीच सीखने की योग्यता के फर्क को जाति जैसे वंशानुगत आधार पर देखा जाता है। मिसाल के तौर पर, दिल्ली के एक सामाजिक संगठन ने बिहार के गया जिले के चयनित प्राथमिक स्कूलों में एक अध्ययन किया और पाया कि 'संस्कार' और वंचित तबके के बच्चों को विरासत में मिले 'अशैक्षिकता' की धारणा ने शिक्षक-छात्र और शिक्षक-समुदाय के रिश्ते के साथ ही स्कूल के वातावरण पर भी बुरा असर डाला था। इस अध्ययन के दौरान किए गए सर्वेक्षण से खुलासा हुआ कि आमतौर पर शिक्षक वंचित तबके के किसी बच्चे के साथ भेदभावपूर्ण रवैए में लिप्त नहीं पाए गए। बल्कि, इस सामाजिक बाहरीपने ने एक खामोश शक्ल अख्तियार कर ली है, जो शिक्षकों और स्कूल प्रशासन के उस उदासीन नजरिए में झलकता है जो उन्होंने मुसहर जैसे वंचित तबके के बच्चों की शैक्षिक उपलब्धियों के बारे में अपना रखी है।

गया के प्राथमिक स्कूल के शिक्षक, जहां मुसहर बच्चे पढ़ते हैं, अपनी नाकामी को बच्चों के अभिभावकों के सूअर पालने और सूअर का मांस खाने जैसे अशुद्ध संस्कृति के मत्थे मढ़ देते हैं।

उनको संस्कारहीन माना जाता है – संस्कार यानी सीखने योग्य होने की सामाजिक योग्यता। हालांकि, छात्रों के साथ बातचीत में शिक्षक सीधे-सीधे जाति का उल्लेख नहीं करते, लेकिन स्पष्ट है कि मुसहर बच्चों के प्रति उनके मन में संस्कार की कमी की धारणा प्रबल है। गया के मझौली प्राइमरी स्कूल के शिक्षक ने बताया: ''सूअर गंदा खाते हैं। जब भी वे जाते हैं, सारी जगह गंदी कर देते हैं। सूअर पालने की वजह से मुसहर समुदाय के लोग और उनके बच्चों में कभी अच्छे 'संस्कार' नहीं आ सकते।'' (सिंह और कुमार, पृ. 38)

धरैया, गया के एक प्राथमिक स्कूल के शिक्षक सीधे-सपाट कहते गए, ''सूअर पालने का काम करने वालों के दिमागी विकास की बात करना भी बेकार है।'' (आईबिड) संस्कार ने अब जाति की धारणा की जगह ले ली है, जिससे वंचित तबके के बच्चों की शैक्षिक नाकामी को उनकी वंशानुगत अशैक्षिकता से जोड़ा जा सके। हालांकि, शिक्षक जाति पर सीधे बात करने से बच रहे थे। उन्होंने जोर दिया कि बच्चों की जातीय पहचान स्कूल में मायने नहीं रखती और हर बच्चे के साथ समान व्यवहार किया जाता है।

यही नहीं, शिक्षकों का शैक्षिकता की वंशानुगतता में यह विश्वास और उनकी शैक्षिक असफलताओं का ठीकरा संस्कार के मत्थे मढ़ने की वजह से शिक्षकों और अभिभावकों में द्वेषपूर्ण रिश्ता पैदा हो गया है। खासकर, वंचित तबके के अभिभावकों के साथ, जो अपने बच्चों की असफलता का आरोप खुलेआम शिक्षकों पर लगाते हैं। उनका दावा है कि शिक्षक उनके बच्चों की पढ़ाई पर बहुत कम ध्यान देते हैं और इसलिए स्कूल की अवधि में उनको अनुशासन में रखने और स्कूल के भीतर रोके रखने की बहुत कम कोशिश करते हैं। विडंबना यह है कि अभिभावक यह भी कह जाते हैं कि बच्चों को अनुशासित

करने के लिए शिक्षकों को उन्हें पीटना भी चाहिए। दूसरी तरफ, शिक्षक कहते हैं कि अगर वह ऐसा करेंगे तो यही अभिभावक इस बात का हिंसक विरोध करेंगे।

कक्षा में बच्चों की शैक्षिकता के बारे में वंशानुगत योग्यता की धारणा अध्ययन-अध्यापन की प्रक्रिया के जरिए और प्रबल हो जाती है। इस प्रक्रिया पर शिक्षक और पाठ्यपुस्तक केन्द्रीय स्थान पर होते हैं, और इस तरह उनका वर्चस्व होता है। विभिन्न पृष्ठभूमियों के छात्रों को ज्ञान के सह-निर्माण और उनके खुद के अनुभव के आधार पर ज्ञान बढ़ाने को प्रोत्साहित करने की बजाय उनकी समझ को खारिज कर दिया जाता है, और सह-निर्माण के जरिए सीखने की उनकी ललक और पहल को बाधित कर दिया जाता है। पढ़ाई के दौरान अंतर्संवाद में छात्रों की कोशिशों को रोक दिया जाता है क्योंकि इसे नैतिकता, मानक बर्ताव और कक्षा के अनुशासन के विरुद्ध माना जाता है।

इस संदर्भ में शिक्षकों का वर्चस्ववादी रवैया एक साक्षात्कार के दौरान एक शिक्षिका की बात से साफ जाहिर होता है : ''इन बच्चों की सीखने की क्षमता बेहद कम है, और हमें (शिक्षकों को) उन्हें सही चीजें सिखानी पड़ती हैं।'' (सुशीला प्रसाद, शिक्षिका, मंझौली स्कूल, सिंह और कुमार में उद्धृत, 2009, पृष्ठ 48) इस रवैये से यह धारणा स्पष्ट हो जाती है कि जो बात बच्चे अपने रोज के अनुभव से पहले से जानते हैं वह औपचारिक शिक्षा के संदर्भ में सही शिक्षा नहीं मानी जाती है, और यह भी कि, हर हाल में, बच्चों की सीखने की क्षमता का आकलन वंश के आधार पर किया जाता है, न कि कक्षा में क्या हो रहा है उसके आधार पर।

मिथक 3 : स्कूली बच्चे सड़क के बच्चों से अलग होते हैं।

नहीं। बच्चे किसी खास पहचान के साथ पैदा नहीं होते, बल्कि उन्हें यह पहचान दी जाती है या फिर वे धीरे-धीरे इस पहचान को हासिल करते हैं। विभिन्न छात्रों में कई बार देखा गया है कि उनकी 'स्कूली पहचान' और 'सामाजिक पहचान' शिक्षकों की नजर में मेल नहीं खाते। मिसाल के तौर पर, 'घरेलू', 'अच्छा' और 'आज्ञाकारी' रहना स्कूली बच्चों की खासियत मानी जाती है।

वे गंभीर रहते हैं, खामोश रहते हैं, और अपना गृह-कार्य अच्छे से करते हैं, और सामान्य तौर पर शिक्षकों की बात सुनते हैं। वे साफ-सुथरे लिबास ढंग से पहनते हैं, खुद की साफ-सफाई का ध्यान रखते हैं, और उनके अभिभावक उनकी पढ़ाई-लिखाई में दिलचस्पी लेते हैं।

इसके बरअक्स, सड़क के बच्चों की पहचान कक्षा में अगंभीर छात्रों के रूप में होती है। सड़क के बच्चों का खुद पर नियंत्रण भी कम होता है। उनकी बेचैनी और उनके स्वभाव में 'वयस्कों जैसा' झुकाव एक विविधता-भरी कक्षा में अलग किस्म के चरित्र के तौर पर लांछित होता है। बार-बार उनकी तरफ बच्चों वाली कोई बात न होने की वजह से इशारा किया जाता है। शिक्षक और स्कूल प्रशासन उनके बारे में बुरी धारणा बनाने लगता है। आखिरकार, एक विविधता-भरी कक्षा में इन बच्चों का दम घुटने लगता है। कक्षा और कक्षा की अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया और विधियों से उनका यह विराग अंततः उन्हें स्कूल बीच में छुड़वा देता है।

खासतौर पर शिक्षक और आमतौर पर स्कूल प्रशासन यह समझता है कि सड़क के बच्चे स्कूल में अपने दोस्तों के साथ खेलने और वक्त गुजारने आते हैं। ऐसे बच्चे जो नियंत्रण से बाहर हैं और खिलंदड़ हैं वे 'बुरे' हैं, जबकि 'खामोश' और 'गंभीर' दिखने वाले और शिक्षक का कहा मानने वाले बच्चे 'अच्छे' होते हैं। ऐसे लेबल लगाने से वास्तव में शिक्षकों की आंखों में चढ़ने और नहीं चढ़ पाने वाले का अंतर पैदा हो जाता है। यह पूर्वाग्रह इस तथ्य से पैदा होता है कि 'स्कूली बच्चों' की उन बच्चों से पहचान अलहदा होती है जो सिर्फ वक्त गुजारने के लिए आते हैं – समस्या पैदा करने वाले बच्चे, यानी सड़क छाप बच्चे। उनके अभिभावकों के बारे में यह माना जाता है कि उन्हें इस बात की परवाह ही नहीं है कि उनके बच्चे पढ़ते हैं या नहीं और वे जल्दी ही वही करने लगते है जो उनके अभिभावक करते हैं। उनके अभिभावक अपने काम के दौरान उनसे पीछा छुड़ाने के लिए स्कूल भेजते हैं।

आमतौर पर सड़क के बच्चों को रोजाना काम पर लगना होता है। ऐसे में एक शत्रुतापूर्ण माहौल में भी उनमें खुद ही संसाधन जुटाने, आत्मनिर्भर होने और आजादी की भावना विकसित होती है। मुख्यधारा की जिंदगी से कटे, उस वृहत्तर समाज में उनकी कोई सामाजिक हैसियत नहीं होती, जहां उनकी मौजूदगी को सहन तो किया जाता है लेकिन भरोसा नहीं किया जाता, क्योंकि उनकी पृष्ठभूमि अनजानी होती है। चूंकि समाज में उनके संबंध महज अनौपचारिक ही होते हैं, ऐसे में सड़क के बच्चों का अन्य लोगों के साथ कोई सुरक्षात्मक संबंध शायद ही बन पाता है। वे अपनी ही दुनिया में

रहते हैं, जिन्हें आगे बढ़ने के लिए या फिर सड़क की जिंदगी के तौर-तरीके सीखने के लिए स्थानीय गैंग से सुरक्षा की जरूरत होती है। कभी-कभार उनकी सामूहिक पहचान बन जाती है, कुछ मौकों पर यह भावना साथी-भाव (कॉमरेड) भी लाती है, जिससे अंशतः ही, उनकी भावनात्मक और मनौवैज्ञानिक जरूरतें पूरी होती हैं। (बोस, 1992, पृ. 52)

कक्षा में सड़क के बच्चों की भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक जरूरतों को समझ पाने की नाकामी उनके स्कूल को बीच में ही छोड़ देने की बड़ी वजह है। मिसाल के तौर पर, वृहन्मुंबई म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन (बीएमसी) द्वारा संचालित स्कूल के शिक्षक और प्रशासन का रवैया बेहद उत्साहजनक था जब बालसखियों को स्कूल में शुरू किया गया और उसमें सड़क के बच्चों ने बड़ी संख्या में हिस्सा लिया। लेकिन, वक्त बीतने के साथ, उनमें से कई बीच में ही स्कूल छोड़ गए। इस योजना के तहत, सड़क के बच्चों के लिए शुरुआती आकर्षण स्कूल द्वारा मुहैया कराए जा रहे मुफ्त कपड़े और पढ़ाई की सामग्री थी।

राजू (11 साल) ने अपने कपड़ों के लिए मुफ्त वितरण योजना का छह महीने तक फायदा लिया। सबसे पहले उसने महालक्ष्मी के स्कूल में दाखिला लिया। हफ्ते-भर के भीतर ही, उसने 'पता' बदल लिया और दादर की सड़कों पर रहने लगा, जहां उसने फिर से नगरपालिका स्कूल में दाखिला ले लिया। उसका आखिरी पड़ाव था बोरीवली (ई) जहां 35 दिनों के भीतर उसने तीसरी बार दाखिला ले लिया था। कुल मिलाकर राजू ने कपड़ों के तीन सेट हासिल कर लिए। उसका दोस्त बताता है, ''उसने दूसरे स्कूल से मुफ्त किताबें भी लीं, उनको बेच दिया और सौ रुपये कमा लिए।''

छोटू (11 साल) की आवाज भय और ईर्ष्या से भरी थी। उसकी उपस्थिति कम हुई और आखिरकार वह छोड़ ही गया। हाजी अली के पास सड़कों पर रहने वाला दस साल का रसिक बताता है, ''दीदी (बालसखी) ने बोला कि अगर मैं स्कूल जाऊं तो मुझे पहनने को कपड़े मिलेंगे, इसीलिए मैं स्कूल में भरती हुआ।'' (एक्सप्रेस न्यूज सर्विस, 8 सितंबर, 2000)

पालिका स्कूलों के प्राध्यापकों को लगा कि इस योजना में कुछ बुनियादी दिक्कत है। महालक्ष्मी में एक हिन्दी माध्यम स्कूल के प्राध्यापक राम शर्मा कहते हैं, ''सड़क के बच्चे स्कूलों को यह सूचना भी नहीं देते कि वे इस इलाके को छोड़ रहे हैं और किसी और जगह जा रहे हैं। उनके लिए यह बहुत आसान है कि किसी और वॉर्ड में बालसखी के साथ जाकर दूसरे स्कूल में दाखिला ले लें, जहां के शिक्षक एक और बच्चे को स्कूल में दाखिल करने को लेकर बेहद उत्साहित रहते हैं।'' अन्य प्राध्यापक इस बात से सहमत हैं। एक मराठी माध्यम स्कूल की प्राध्यापिका मीना फोंडगे कहती हैं, ''ऐसे बच्चे जो नियमित स्कूल आते हैं, उनके पास एक स्थायी घर होता है और कमोबेश एक स्थायी घरेलू पृष्ठभूमि भी। सड़क के बच्चे तो स्कूली पाठ्यक्रम को पांच दिन से ज्यादा पास भी नहीं रखते। कोई भी उपस्थिति पंजिका ले आइए, और यह बात हर दिन साफ हो जाती है कि गैरमौजूद छात्रों में से ज्यादातर सड़कों पर रहने वाले लड़के हैं, जो वहीं आपको खेलते मिल जाएंगे।''

दूसरी तरफ, बच्चे अपनी कम दिलचस्पी के लिए शिक्षकों को दोषी ठहराते हैं। उनमें से ज्यादातर की शिकायत है कि शिक्षक या तो बहुत रूखे थे या फिर उनको जानबूझकर नजरअंदाज करते थे, इसी की वजह से उन्हें हमेशा पराएपन का भाव लगता रहा। बच्चों का दावा है कि उनमें से कुछ को पीटा भी गया। ''ट्विंकल, ट्विंकल लिटल स्टार'' और ए से एपल जैसे गीतों को रटाना भी अग्निपरीक्षा सरीखा था। इसलिए, वे बस छोड़ ही गए, मुफ्त की पोशाक काम नहीं आई। सात साल का इमरान कहता है, ''हो सकता है मैं ट्रैफिक पर भीख मांगता रहूं। इस तरह मैं रोजाना कम से कम 40 रुपए कमा लेता हूं लेकिन मुझे किसी टीचर का ऑर्डर नहीं सुनना पड़ता।'' (आईबिड)

ऐसे उदाहरण साफ-साफ इशारा करते हैं कि शिक्षकों और स्कूल प्रशासन में सड़क के बच्चों की सामाजिक स्थिति की समुचित समझ नहीं है। जबकि स्कूली बच्चों के रूप में जाने जाने वालों की सामाजिक पृष्ठभूमि से कोई विवाद नहीं, और ऐसा सड़क के बच्चों के मामले में नहीं होता। उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि संपर्क और सड़क के बच्चों की सामाजिक पृष्ठभूमि से मेल नहीं खाती। सड़क के बच्चों के संपर्कों को शक की निगाह से देखा जाता है। उनकी ''सड़क की'' पहचान उनके शिक्षकों, सहपाठियों और स्कूल के साथ सार्थक रिश्ते विकसित होने में बाधक हो जाती है। वस्तुतः कक्षा में उनकी ''सड़क वाली'' पहचान उनके खराब शैक्षणिक उपलब्धियों से और गहरी हो जाती है, और यह शिक्षकों और अध्यापकों की धारणा की वजह से और अधिक पुख्ता होती जाती है।

मिथक 4: लड़कों के लिए पढ़ाई, लड़कियों के लिए ब्याह।

नहीं। यह पारंपरिक रूप से बनाई गई पुरुषवादी सोच है। अब तक, स्कूल भी लड़कियों को लेकर ऐसी ही दकियानूसी धारणा बनाए हुए थे। मिसाल के लिए, राजस्थान की मियो मुस्लिम लड़कियों का मामला ही है, जो पहली पीढ़ी की छात्रा हैं। दो गांवों के बीच एक तुलनात्मक अध्ययन किया गया, जिसमें से एक गांव में स्कूली मध्यस्थता हुई जबकि दूसरे में नहीं। अध्ययन में स्पष्ट हुआ कि स्कूल की भूमिका मियो मुस्लिम लड़कियों में बेहद कम रही है। उनकी दिनचर्या वैसी ही रही, जो स्कूली मध्यस्थता कार्यक्रम से पहले थी।

एक आम मियो लड़की का दिन अलसभोर में ही शुरू हो जाता है और देर रात शाम को खत्म होता है। वह नाश्ता तैयार करती है, मवेशी दूहती है, तालाब से पानी ढोकर लाती है, दोपहर का खाना बनाती है, कपड़े धोती है, सूखी लकड़ियां और पत्ते इकट्ठा करती है, मवेशियों को चारा देती है, अपने छोटे भाई-बहनों का ख्याल रखती है, और घर के सदस्यों के दूसरे कामों में मदद करती है। चौदह साल की एक मियो मुस्लिम छात्रा अफसाना कहती है, ''सवेरे से शाम तक काम होए है, लड़के तो ना करें।'' इस बीच वह स्कूल भी जाती है। वह सोचती है कि काश! वह एक लड़का होती! ''लड़का हो तो इतना काम ना करना पड़ो.... लड़के को बात सुनना पड़ो, जब कोई काम बरो, यो सबेरे में उठे तो भी बात सुनना पड़ो।'' (अहमद, 2005, पृ. 78)

कक्षा में भी मियो मुस्लिम लड़कियों को कठिन चुनौतियां झेलनी पड़ती हैं। इस समुदाय की प्रथा है कि महिलाएं मर्दों के संपर्क में नहीं आती हैं और लड़कियां इस परंपरा से बंधी होती हैं। ऐसे में लड़कियां शिक्षकों से सीधे संवाद स्थापित करने से हिचकती हैं। कक्षा से शिक्षकों का नियमित रूप से अनुपस्थित रहना भी इस समुदाय की लड़कियों को खतरे की तरह लगता है जहां इन्हें अपने सहपाठियों के बीच असुरक्षा महसूस होती है। लड़कियां कक्षा के पढ़ने और लिखने के अभ्यास में हिस्सा लेने में नाकाम रहती हैं। वास्तव में, समुदाय के लोग स्कूल में उनकी हिस्सेदारी को खराब मानते हैं।

समुदाय के लोग स्कूली शिक्षा को समय की बर्बादी समझते हैं, क्योंकि उन्हें लड़कों के मुकाबले लड़कियों के लिए मदरसे की शिक्षा ज्यादा मुफीद महसूस होती है। वजह, लड़कों को आने वाले समय का कमाऊ पूत माना जाता है, यह बात इससे भी स्पष्ट हो जाती है जब हम मियो लड़कियों के मां-बाप और दादी-दादाओं से बात करते हैं। ''स्कूली शिक्षा'' किसी अच्छी लड़की के गुणों के लिहाज से बेहद नीचे मानी जाती है। दूसरे विचार में, दूसरे सामाजिक मानक, जैसे कि धार्मिक रीति-रिवाजों का पालन, जल्दी शादी और घरेलू कामों में मदद करना वगैरह को गुणों में शामिल किया जाता है। लड़कियों के लिए, स्कूली शिक्षा की बनिस्बत मदरसे की शिक्षा को उचित माना जाता है, ताकि वह मियो समुदाय की परंपराओं के तहत पल-बढ़ सके।

समुदाय के सामाजिक मूल्य मियो लड़कियों के अपने बारे में विचारों में भी देखने को मिलते हैं। वे भी अच्छे और बुरे के बीच फर्क करती हैं। अफसाना से जब पूछा गया कि वह नियमित स्कूल की बजाय मदरसा जाना पसंद करती है, तो उसके जवाब में भी यही झलकता है "लड़के वाले पूछे है लड़की दीनी तालीम और उर्दू जाने या ना।" (आईबिड, पृ. 78) ऐसा ही विचार असीम जैसे दूसरे युवा मियो सहपाठियों का भी है, जिसका कहना है: "लड़के कमाऊ हैं। स्कूल में पढ़ाई के बाद, लड़की की तो शादी हो जाती है। पढ़ाई जरूरी ना हो उतनी।" (आईबिड, पृ. 77)

अफसाना की तरह ही बारह साल की चंपा एक मेधावी दलित छात्रा है जो अपने गांव के स्कूल में छठी कक्षा में पढ़ती है। उसके मां-बाप दोनों भूमिहीन खेतिहर मजदूर हैं। उनकी आमदनी इतनी कम थी कि उन लोगों ने चंपा से स्कूल छुड़वाने का फैसला कर लिया। उसने इस बात का पुरजोर विरोध किया क्योंकि वह आगे पढ़ना चाहती थी। चंपा को समझाने-बुझाने की खातिर उसके अभिभावकों ने उसे कहा, ''तुम्हारी शादी करवाकर हम तुम्हें खुश रखेंगे।'' चंपा ने जवाब दिया, ''मुझसे स्कूल छुड़वाकर आप मुझे खुश नहीं रख पाएंगे।'' दादी ने कोशिश की, ''बुरा मत मानो मेरी बच्ची, हम तुम्हारे लिए एक अच्छा लड़का खोजेंगे।'' चंपा ने पूछा, ''अगर मैं पढ़ूंगी नहीं तो अच्छा लड़का कैसे मिलेगा?'' (मैकवॉन, पृ. 17)

अगर लड़की स्कूल चली भी जाए तो स्कूल के चयन के मामले में भेदभाव बरता जाता है। उज्जैन के बेरवा जनजाति के एक परिवार में एक दिलचस्प किस्म का सामाजिक भेदभाव देखने को मिला, जिसमें लड़कों को तो निजी स्कूलों में पढ़ने भेजा जाता था, लेकिन लड़कियों को घटिया सरकारी स्कूलों में।

चंपा और अफसाना जैसी लड़कियों की आवाज से वैसी लड़कियों के सामाजिक अनुभव जाहिर होते हैं जो वंचित पृष्ठभूमियों से आती हैं, जहां लड़कियों की शिक्षा को लड़कों की तुलना में कम तरजीह मिलती है। घरेलू कामों का बोझ बंटाने का उनका काम बचपन से ही उनके हिस्से पड़ता है और यह काम उनके पूरे स्कूली जीवन भर चलता ही रहता है, लेकिन इस काम पर कभी गौर भी नहीं किया जाता। हिन्दू-बाहुल्य सामाजिक परिवेश में, लड़के के जन्म पर खुशियां मनाई जाती हैं, जबकि लड़की पैदा होने पर विषाद छा जाता है। (काकर, 1987)

ऐसा ही पल आता है जब एक लड़की युवा होती है। उत्सवी रिवाजों में उसकी भूमिका खत्म हो जाती है क्योंकि रजस्वला होने पर वह अशुद्ध हो जाती है। आने वाले वक्त में इस सामाजिक अनुभव से उनके भीतर एक 'नकारात्मक स्व' का विकास हो जाता है, जिसे उनके आत्म का क्षरण हो जाता है। कम उम्र में विवाह जैसी परंपरा इसमें और जटिलता लाती है। वास्तव में, वे सारे रीति-रिवाज जिनके तहत लड़कियां पली-बढ़ी होती हैं, और जिनके भीतर महिला का विकास होता है, वही उनके भीतर एक ऐसे तंत्र को बना देता है, जो शिक्षा की बाल-केन्द्रित नीतियों से मेल नहीं खाता। इस बारे में, लड़कियों को शिक्षित करने के लिए बाल-हितैषी और खास रणनीतियां आगे तभी सच में कामयाब हो पाएंगी जब बालिकाओं के संदर्भ में ऐसे मामलों को ध्यान में रखा जाएगा और तदनुसार नीतियां बनाई जाएंगी। (कुमार, 2010)

मिथक 5: बच्चे सिर्फ पाठ्यपुस्तकों के जरिए शिक्षकों से कक्षा में पढ़ते हैं!

नहीं। बच्चे कक्षा की चहारदीवारी से बाहर उस सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में जाकर ज्यादा सीखते हैं, जिसमें वे पैदा हुए हैं और पले-बढ़े हैं। यह बहुत आम धारणा है कि बच्चे स्कूली किताबों और शिक्षकों के जरिए सीखते हैं। लेकिन बुद्धिमान छात्र वही माने जाते हैं, जो पाठ्यपुस्तकों की बातों को अच्छे से याद रखकर उसे ज्यों का त्यों परीक्षा में पेश कर दें। उन्हें इस बात की न सिर्फ शिक्षकों बल्कि उनके अभिभावकों और समाज से भी दाद मिलती है। बार-बार यह देखा जाता है कि ज्ञान के सह-निर्माण में छात्रों की भागीदारी को उत्साहित और उनके जीवन-अनुभवों पर ज्ञान बढ़ाने की बजाय उनके ज्ञान को बेकार मान लिया जाता है और सह-निर्माण के जरिए सीखने की उनके पहल और उत्साह को खत्म कर दिया जाता है।

आइए, बिहार के गया में एक स्कूल में अध्यापक के एक दिन की बातचीत का परीक्षण करते हैं, जहां एक ग्रामीण स्कूल में बड़ी संख्या में दलित, खासकर मुसहर, समुदाय के बच्चे पढ़ते हैं। एक शिक्षक ने चौथी कक्षा के बच्चे को उनके पाठ 'हलवाहा राजकुमार' के अंत में दिए गए अभ्यास के तहत गांव पर लेख लिखने को कहा। कुछ छात्रों ने, खासकर वंचित तबके के बच्चों ने, अपने ही गांव की सामान्य बातें अपने अनुभव के आधार पर लिखीं। लेख में वर्णन था कि किस तरह उनके गांव में फसलें उगाई जाती हैं, किस तरह उनके माता-पिता भूमिपतियों के यहां काम करते हैं, कैसे जब धान की फसल ठीक नहीं होती, तो वे भुखमरी के शिकार हो जाते हैं, कि किस तरह एक चमार (अजा) दूसरी जाति के लोगों के बरतन छू देता है तो बरतनों को धोया जाता है। यह ऐसी रोजमर्रा की हकीकत है जो बच्चे अपनी सामाजिक दुनिया में महसूस करते हैं। (सिंह और कुमार, 2009)

बहरहाल, शिक्षक खुद भी इन वास्तविकताओं से परिचित थे, क्योंकि वे भी इसी समाज का हिस्सा थे। उन्होंने न सिर्फ इन लेखों को खारिज कर दिया, बल्कि इन छात्रों की कम मानसिक क्षमता पर अपमानजनक बदतर टिप्पणियां भी कीं। तब शिक्षक ने इन छात्रों को निर्देश दिया कि वे गांव का वर्णन करते समय पाठ्यपुस्तक में दिए गए पाठ की भाषा और विषयवस्तु का पालन करें, जो इस प्रकार है:

> दूसरा आदमी (पहले आदमी से): यह वाकई बहुत अच्छी जगह है। जहां राजा का बेटा हल चलाता है, जहां कोई किसी का नौकर नहीं, हर कोई भाई-भाई है।
>
> पहला आदमी: अच्छा राजकुमार! आप में और बाकी नागरिकों में क्या अंतर है?
>
> बलराम (राजकुमार): केवल एक ही अंतर है कि हमारे पास थोड़ी ज्यादा जमीन और गायें हैं। (आईबिड, पृ. 48)

पाठ में दिए गए इस गांव की छवि रोजमर्रा की वास्तविकता से विरोधाभासी है, जिसे न सिर्फ वंचित तबके के, बल्कि गैर-वंचित तबके के बच्चे भी अनुभव करते हैं। पाठ में दिए गए काल्पनिक विवरण से तारतम्य बिठाना बच्चों के लिए मुश्किल है, जहां राजा का

बेटा अपने हाथों से खेत जोतता है, और जहां लोग आपस में भाइयों की तरह रहते हैं। हर रोज, दलित बच्चे अपने भूमिहीन मां-बाप को दूसरे लोगों के खेतों में काम करते देखते हैं। वे यह भी देखते हैं कि लोग अगड़ी और पिछड़ी जातियों में बंटे हैं और निचली जातियों के लोग अगड़ी जातियों के लिए काम करते हैं। बच्चों ने अपने दैनिक अनुभवों से जो ज्ञान हासिल किया था उसे बेकार मान कर खारिज करके और पाठ्यपुस्तकों का 'मानक' ज्ञान समझने और सीखने की उनकी अयोग्यता के बारे में अपमानजनक टिप्पणियां करके, उनके आत्मसम्मान को बुरी तरह चोट पहुंचाते हैं और उन्हें सीखने की प्रक्रिया से दूर कर देते हैं।

दूसरी तरफ, जब बच्चे किसी पाठ की विषयवस्तु से खुद को जोड़ सकते हैं, तो वह मानसिक और भावनात्मक रूप से सीखने की प्रक्रिया में शामिल हो जाते हैं। बिहार के गया में बड़का बांध स्कूल में चौथी कक्षा में एक पठन अभ्यास के दौरान इस बात को अध्येताओं ने बड़े स्पष्ट तौर पर देखा। पाठ एक किसान झूरी और उसके दो बैलों हीरा और मोती के बारे में था। बच्चे इसकी विषयवस्तु से खुद को जोड़ पा रहे थे। ऐसे में उन्होंने इस कहानी को बड़े गौर से सुना, उनके चेहरे की भंगिमाएं भी कहानी में हर मोड़ के साथ बदल रही थीं। हालांकि, शिक्षक और पाठ्य आधारित वार्तालाप के तरीके की वजह से छात्रों के पास इस अंतर्संवाद में बदलने और आलोचनात्मक दृष्टि हासिल करने का कोई मौका नहीं था।

शिक्षक छात्रों के ज्ञान को कम आंकते हैं, खासकर अगर बच्चा किसी वंचित तबके से हो, तब तो शिक्षक छात्र के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश को जरा भी सम्मान नहीं देते। शिक्षक और स्कूल प्रशासन जाति, वर्ग, धर्म, नस्ल, भाषा वगैरह पर ज्यादा जोर देते हैं ताकि कक्षा में छात्रों के ज्ञान की पहचान की जा सके। ऐसे पूर्वाग्रह और दुराग्रह बच्चों के शैक्षिक अवसरों पर बुरा असर डालते हैं, प्राथमिक कक्षाओं में छात्रों को अध्यापन के वातावरण से दूर करने में अपनी भूमिका निभाते हैं।

बच्चे प्रायः अपनी रोजमर्रा की जिंदगी से जुड़े कुछ जटिल वास्तविकताओं वाले सवाल पूछ दिया करते हैं। संवाद को प्रोत्साहित करने की बजाय कक्षा में उनकी आवाज खामोश कर दी जाती है। शिक्षकों, स्कूल प्रशासन और अभिभावकों में एक आम धारणा होती है कि शिक्षकों को कक्षा में छात्रों से एक दूरी बनाकर रखनी चाहिए। छात्रों को भी सिर्फ उन्हीं बातों पर जवाब देना चाहिए जिसे शिक्षक कक्षा में पढ़ाएं। शिक्षक के साथ संवाद में बाकी किसी किस्म की लिप्तता को शिक्षक के ज्ञान की अक्षुण्णता पर खतरे की तरह देखा जाता है। यह माना जाता है कि अगर शिक्षक छात्रों के साथ ज्यादा मित्रवत् हो जाएं तो बच्चे इसका बेजा फायदा उठाने लगते हैं और शिक्षकों का बच्चों पर से नियंत्रण कम हो जाता है और इस तरह कक्षा में अनुशासनहीनता की स्थिति पैदा हो जाती है।

छात्रों के ज्ञान की इस अस्वीकृति से कक्षा में शिक्षकों और छात्रों के बीच टकराव बढ़ता है। ऐसे टकराव की वजह से शिक्षकों द्वारा हिंसा होती है, क्योंकि उन्हें लगता है कि छात्र शिक्षकों के प्राधिकार को चुनौती दे रहे हैं। छात्रों को अनुशासन सिखाने और पढ़ाई में लगाने के नाम पर बेंत लगाई जाती है। यही नहीं, अभिभावक तब भी शिकायत करते हैं जब शिक्षक छात्रों के साथ मित्रवत हो जाते हैं और उन्हें नहीं पीटते। प्राथमिक स्कूलों के शिक्षक और प्रिंसिपलों को एक शांत-नीरव कक्षा चाहिए होती है। 'कार्यकलापों के जरिए पढ़ाई' और 'अनुशासित कक्षा' के बीच की दुविधा को दिल्ली में एक एमसीडी स्कूल की शिक्षिका ने कुछ यूं बताया :

> अगर हम सोचते हैं कि बच्चे ग्रुप वर्क करें ..... पेयर्स में टीम करें..... तो बाहर वालों को लगता है क्लास हमसे संभल नहीं रही..... अब अगर हेडमास्टर/हेडमिस्ट्रेस भी इसी सोच की और उससे थोड़ी-बहुत आवाज ठीक ना लगे..... तो प्रॉब्लम हो जाती है। (जैन, 2006, पृ. 137 में उद्धृत)

मिथक 6 : सभी बच्चों का स्कूल में दाखिला कराना ही सर्व-शिक्षा है।

भारत में प्राथमिक शिक्षा के संदर्भ में आम धारणा यही है कि समाज के हर वर्ग के बच्चों का स्कूल में दाखिला करा भर देना सर्वशिक्षा कहलाता है। हालांकि अनेक ऐसे अध्ययन हैं जिनसे पता चलता है कि विभिन्न सामाजिक-आर्थिक संस्कृति, प्रजाति, भाषायी, धार्मिक पृष्ठभूमि से आए बच्चे जब स्कूलों में आते हैं तो उनके अलग शैक्षणिक अनुभव और परिणाम होते हैं। ऐसे में सर्वशिक्षा का मतलब केवल बच्चों का दाखिला कराना नहीं बल्कि इससे आगे बढ़कर स्कूल जाने वाले हर बच्चे को इस बात का एहसास दिलाना होगा कि भले ही वह किसी भी पृष्ठभूमि से ताल्लुक रखता

बॉक्स 1.3

लॉरेटो डे स्कूल, सियालदह

समावेश में विश्वास रखने वाला एक स्कूल

पश्चिम बंगाल के कोलकाता के सियालदह का लॉरेटो डे स्कूल एक अभिनव प्रयोग का उदाहरण है, जहां निजी क्षेत्र के स्कूल ने स्थापित मानकों से परे जाकर मध्यवर्गीय और गरीब बच्चों को एक साथ पढ़ाने में कामयाबी हासिल की है। इसके लिए इन्होंने शिक्षा विज्ञान, पाठ्यक्रम और संसाधनों का रचनात्मक और लचीला इस्तेमाल किया। इस स्कूल में 1400 नियमित छात्र पढ़ते हैं जिनमें से 700 छात्र फीस भरते हैं और इसी पैसे से शिक्षकों को तनख्वाह दी जाती है। बाकी के 700 छात्र झुग्गी बस्तियों में रहने वाले गरीब परिवारों के बच्चे हैं। छात्रों के दाखिले की न्यूनतम उम्र 4 साल है और दाखिला लॉटरी के जरिए किया जाता है। यहां पढ़ने वाले सभी छात्र एक-सी पोशाक पहनते हैं, साथ खेलते, पढ़ते और साथ खाते हैं।

नियमित पाठ्यक्रम के अलावा स्कूल में तीन अन्य पाठ्यक्रम भी चलाए जाते हैं जो सड़क पर रहने वाले बच्चों, घरों में काम करने वाले बाल-मजदूरों और ग्रामीण बच्चों के लिए है। रेनबो नामक पाठ्यक्रम सड़क पर रहने वाले बच्चों के लिए है। इस पाठ्यक्रम के बच्चों को यह छूट है कि सुबह से लेकर दोपहर तक उन्हें जब भी फुरसत मिले वे स्कूल आ सकते हैं। जब वे स्कूल आते हैं तो हमेशा ही कोई ना कोई नियमित छात्र उन्हें पढ़ाने के लिए मौजूद रहता है। ऐसा इसलिए संभव है क्योंकि यहां के नियमित पाठ्यक्रम को बड़े ही अनोखे तरीके से तैयार किया गया है। नियमित पाठ्यक्रम में पढ़ने वाले छात्रों के लिए हफ्ते में दो कक्षाएं कार्य-शिक्षा की होती हैं, इसका मतलब है कि हर दिन 50 नियमित बच्चे ऐसे छात्रों को पढ़ाने के लिए उपलब्ध होते हैं। सड़क पर रहने वाले बच्चों को पहले अपनी उम्र के दूसरे नियमित कक्षा के छात्रों के स्तर तक लाया जाता है और फिर उन्हें उनकी उम्र के हिसाब से नियमित कक्षा में दाखिल किया जाता है। लॉरेटो के बच्चों को प्रोत्साहित किया जाता है कि वे घरों का काम करने वाले बाल-मजदूरों से बात करें और उनके साथ खेलें, उनकी कहानियां सुनें और जिन घरों में ये काम कर रहे हैं उन घरों के मालिकों को भी इस बात के लिए राजी करें कि वे उन बच्चों को स्कूल भेजें। लॉरेटो ने इस तरीके से ऐसे 239 बच्चों को दाखिला दिया है। लॉरेटो के छात्र हर गुरुवार (इस दिन स्कूल की छुट्टी होती है) ग्रामीण इलाकों में पढ़ने वाले प्राथमिक विद्यालय के 3,500 छात्रों से बातचीत करते हैं और उन्हें पढ़ाते भी हैं।

स्कूल शिक्षण की अलग-अलग प्रणालियों का इस्तेमाल करता है ताकि कक्षा में पढ़ने वाला हर छात्र बुद्धिमत्तापूर्ण ज्ञान हासिल कर सके। क्रियाकलापों पर आधारित शिक्षण-प्रणाली और स्थानीय संसाधनों के इस्तेमाल पर जोर दिया जाता है। स्कूल इस बात का खास ध्यान रखता है कि सभी क्रियाकलाप कलात्मक हों, न कि ऐसे जिनके लिए पैसे की जरूरत हो, ताकि गरीब बच्चे भी उनका हिस्सा बन सकें। शैक्षणिक रूप से कमजोर छात्रों के लिए भी वैकल्पिक पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं। छात्रों को पढ़ाई के आधार पर पहले, दूसरे या तीसरे नंबर पर नहीं रखा जाता है और न ही उनमें नंबर पाने की होड़ पैदा की जाती है। छात्रों को इस तरह तैयार किया जाता है कि वे अपने खुद सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन को ही पीछे छोड़े सकें। प्रतिभा को तोहफा मानकर उसे पुरस्कृत नहीं किया जाता, बल्कि छात्रों को उनकी मेहनत के लिए पुरस्कृत किया जाता है।

रेनबो पाठ्यक्रम के तहत एक बच्चे के जरिए दूसरे बच्चे को शिक्षा देना और साथ मिलकर पढ़ाई करना, घरों में काम करने वाले और ग्रामीण बच्चों के लिए पाठ्यक्रम विकसित शिक्षण-प्रणाली का प्रतीक है। छात्रों को यह समझाया जाता है कि वे क्या कर रहे हैं और क्यों कर रहे हैं। उनके सामने अपने अनुभवों से सीखने का मौका होता है और इस तरह वे आज हमारे देश में व्याप्त कुछ ज्वलंत सामाजार्थिक मुद्दों को जानते हैं। स्कूल में विभिन्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के छात्र पढ़ते हैं और उनकी विभिन्न संस्कृतियों के प्रति स्कूल बहुत संवेदनशील है और वह हर संस्कृति को बढ़ावा देता है।

गरीब बच्चों के साथ जो अन्याय होता है स्कूल उसे समझता है और इसलिए उन्हें प्राथमिकता देने के लिए हमेशा तैयार रहता है। स्कूल हर छात्र के आत्मसम्मान को गंभीरता से समझता है और सभी मौजूदा व्यवस्थाओं पर करीब से नजर रखता है। अगर कोई व्यवस्था ऐसी है जिससे किसी छात्र में हीनभावना पैदा होती है तो उसे खत्म करने या नए सिरे से गढ़ने की कोशिश करता है। स्कूल का पाठ्यक्रम बाकी छात्रों को गरीब छात्रों से मिलने-जुलने और उनके साथ संबंध बनाने के लिए प्रोत्साहित करता है और छात्रों को विभिन्न पृष्ठभूमि वाले छात्रों के अनुभवों को साझा करने का मौका मिलता है। यहां तक कि मध्यमवर्गीय अभिभावक भी विभिन्न पृष्ठभूमि वाले छात्रों से मिलने-जुलने के शैक्षणिक मूल्य को समझते हैं। यहां पेरेंट्स टीचर्स मीटिंग भी शिक्षा के विभिन्न पहलुओं को समझने के लिए है, न कि हर बच्चे की कमियों की चर्चा के लिए। इस तरह यह स्कूल शिक्षकों, छात्रों और अभिभावकों को विभिन्न सामाजार्थिक अनुभवों और मुद्दों को समझने का अवसर प्रदान करता है और व्यावहारिक रूप से यह संभव हो पाता है कि स्कूल के इस विजन और उद्देश्य के सफल क्रियान्वयन में सभी अपनी भूमिका निभा सकें।

(डीएफआईडी, यूनिसेफ, एनयूईपीए ओर एडीआरआई की साझेदारी में 2007 में दिल्ली में देशकाल सोसाइटी की ओर से आयोजित एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में लॉरेटो डे स्कूल की प्रिंसिपल सिस्टर सिरिल की ओर से दी गई एक प्रस्तुति पर आधारित।)

हो, मगर स्कूल में सभी समान हैं। उस तरह से समग्र कक्षाओं और स्कूलों का मतलब एक ऐसी जगह होगी जहां बच्चों का अलग पृष्ठभूमि से होना एक समस्या नहीं बल्कि शिक्षण का एक साधन हो और इसे बढ़ावा दिया जाए, एक ऐसी जगह जहां विभिन्न पृष्ठभूमियों के बच्चों को महत्व दिया जाए, वे बिना किसी डर या भेदभाव के अपने अनुभवों को व्यक्त करने में सुरक्षित महसूस कर सकें और जहां शिक्षण-प्रणाली इस तरह की हो कि वह विभिन्न पृष्ठभूमियों के बच्चों की शिक्षा-संबंधी जरूरतों और उनके हितों का ध्यान रखती हो।

तात्कालिक चुनौतियां

अब तक हमने जिन चुनौतियों का जिक्र किया उससे हमें पता चलता है कि विभिन्न पृष्ठभूमि वाले बच्चों को शिक्षा मुहैया कराना कितनी बड़ी चुनौती बन चुकी है। वास्तव में जैसे-जैसे स्कूली प्रणाली विविध होती जा रही है, वैसे-वैसे शिक्षण-व्यवस्था में व्याप्त संबंध (छात्र से छात्र का संबंध, शिक्षक से शिक्षक का संबंध, प्रशासक से शिक्षक का संबंध, स्कूल बोर्ड और प्रशासन का संबंध, अभिभावकों और शिक्षकों के बीच का संबंध) भी जटिल होते जा रहे हैं। असंख्य सामाजिक सरोकारों, लैंगिक झुकाव, आर्थिक स्तर, मान्यताओं और सांस्कृतिक कसौटियों को एक साथ लेकर चलने वाले शिक्षण-संस्थानों के सामने आज कई सारी चुनौतियां हैं जो महज कक्षाओं तक ही नहीं बल्कि कक्षाओं के बाहर भी व्याप्त हैं। इस संबंध में कुछ विशिष्ट चुनौतियां हैं:

चुनौती 1 – कक्षाओं की बढ़ती विविधता को पहचानना।

यह समझने की जरूरत है कि स्कूल में विभिन्न जाति, कक्षा, लिंग, नस्ल, भाषा, धर्म से जुड़ी पृष्ठभूमियों के बच्चे आते हैं और इस वजह से कक्षाओं में छात्रों की सामाजिक संरचना बदल रही है। ये विविधताएं पाठ्यक्रम, शिक्षण-प्रणाली, शिक्षण-संसाधनों, अध्यापकों की शिक्षा में बदलाव से जुड़े नए मसले और चुनौतियां पेश करती हैं ताकि विभिन्न पृष्ठभूमियों से आए छात्रों की शिक्षा-जरूरतों को पूरा किया जा सके। इन मुद्दों और चुनौतियों का हल निकालने से पहले नीति-निर्माताओं और शिक्षकों को विभिन्न पृष्ठभमि से आए छात्रों के हितों और शिक्षा से जुड़ी जरूरतों को समझना होगा।

चुनौती 2 – विभिन्न छात्रों के लिए अलग-अलग डाटाबेस तैयार करना और उनका रखरखाव।

स्कूली कक्षाओं में विभिन्न वर्गों के छात्रों की बढ़ती भागीदारी से भारत में प्राथमिक विद्यालयों की सामाजिक संरचना में जबरदस्त बदलाव आए हैं। शिक्षा-उपलब्धियों पर जो आंकड़े मौजूद हैं उनसे विभिन्न पृष्ठभूमियों के छात्रों के बीच खासा अंतर पाया गया है। मगर जब तक विभिन्न पृष्ठभूमियों के इन छात्रों के सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक विशेषताओं की स्पष्ट समझ नहीं होती तब तक इन बच्चों को शिक्षा मुहैया कराने के लिए कक्षाओं, स्कूलों और प्रणाली स्तर पर न तो कोई रणनीति तैयार की जा सकती है और न ही कोई योजना बनाई जा सकती है। यही वजह है कि विभिन्न पृष्ठभूमियों वाले छात्रों से संबंधित आंकड़े जुटाना और उनका विश्लेषण करना बेहद जरूरी है ताकि बेहतर रणनीतियां और शिक्षण-संबंधी जरूरतों का पता चल सके और कक्षाओं और स्कूलों को सर्वशिक्षा के लिए तैयार और जिम्मेदार बनाया जा सके।

चुनौती 3 – शिक्षकों की मान्यताओं और अभ्यासों पर आधारित मानव-जाति से संबंधित शोध का विकास करना।

शिक्षकों की मान्यताओं और उनके व्यवहारों और साथ में शिक्षण-शिक्षा ग्रहण करने की प्रक्रियाओं, और विभिन्न पृष्ठभूमियों से आए छात्रों के शिक्षा संबंधी अभ्यासों पर इसके असर को समझना सर्वशिक्षा कक्षाओं के विकास के लिए बेहद जरूरी है। इस सबकी जानकारी के अभाव में यह आंकलन करना मुश्किल होगा कि शिक्षकों की पेशेवर विकास संबंधी आवश्यकताएं क्या हैं और उनकी ट्रेनिंग के लिए पाठ्यक्रमों, अभ्यासों और प्रक्रियाओं का विकास भी मुश्किल होगा। नीतियों और अभ्यासों के बेहतर विकास के लिए स्कूल-आधारित मानव-जाति संबंधी शोध बेहद जरूरी है। चूंकि शिक्षा देना और शिक्षा-ग्रहण करने की प्रक्रिया दोनों ही कुछ खास संदर्भों पर आधारित होते हैं, इसलिए इस तरह के शोध से शिक्षकों को प्रशिक्षण देने में मदद मिलेगी और संदर्भ के प्रति उनमें बेहतर समझ विकसित होगी और वे अपनी कक्षाओं में इसे शामिल कर सकेंगे। इस तरह शिक्षकों को तैयार किया जा सकेगा कि वे विविधताओं के बीच शिक्षण के आम सिद्धांतों को अमल में ला सकेंगे।

चुनौती 4 – शिक्षकों के प्रशिक्षण और अध्यापकों के शिक्षा-कार्यक्रमों में विविधता के मसले पर खासा जोर देने की जरूरत है।

शिक्षकों के प्रशिक्षण और शिक्षा-कार्यक्रमों के लिए प्रभावी और सार्थक ढांचा तैयार करने से शिक्षकों के पेशेवर विकास-संबंधी जरूरतों को पहचानने में मदद मिलेगी। इस ढांचे के प्रभावी होने के लिए जरूरी है कि यह भारत में तात्कालिक प्रारंभिक कक्षाओं की बदलती सामाजिक संरचनाओं से जुड़ाव रखता हो। विभिन्न पृष्ठभूमियों से आए छात्रों को शिक्षा देने के लिए शिक्षण अभ्यासों और प्रक्रियाओं का खासा लचीला होना जरूरी है। साथ ही पाठ्यक्रमों और शिक्षण सामग्रियों में भी लचीलेपन की जरूरत है। विभिन्न जातियों, वर्गों, लिंगों, संस्कृतियों, भाषाओं, धर्मों आदि के बारे में शिक्षकों की व्यक्तिगत और पेशेवर मान्यताएं क्या हैं, विभिन्न पृष्ठभूमियों से आए छात्रों के साथ शिक्षकों के संबंधों पर इसका कितना प्रभाव पड़ता है, यह पता लगाना भी बेहद जरूरी है। हालांकि साक्ष्यों से जो पता चलता है उसके मुताबिक शिक्षकों के शिक्षण और प्रशिक्षण के मौजूदा कार्यक्रम फिलहाल शिक्षकों की पेशेवर जरूरतों को पूरा नहीं करते कि वे विभिन्न पृष्ठभूमियों से आए छात्रों को पढ़ाने के लिए खुद को तैयार कर सकें।

चुनौती 5 –प्राथमिक शिक्षा से जुड़े शिक्षकों में विविधता बनाए रखना।

सर्वशिक्षा के लिए जरूरी है कि शिक्षकों में भी विविधता बनाए रखा जाए। अगर शिक्षक शिक्षकों पर नजदीक से नजर बनाए रखें तो इससे शिक्षकों और छात्रों दोनों को फायदा होगा। विविधतापूर्ण शिक्षक विभिन्न पृष्ठभूमियों से आए छात्रों के लिए आदर्श साबित हो सकते हैं और छात्रों को प्रेरित कर सकते हैं कि वे उपलब्धियों को और बेहतर बना सकें। विभिन्न वर्गों से आए छात्र अपने साथ खास अनुभव और परिदृश्य लेकर भी आते हैं और कक्षाओं में इनका जिक्र करने से विभिन्न पृष्ठभूमियों से आए छात्रों को उनसे जुड़ाव महसूस करने में आसानी होती है। मुमकिन है कि ऐसे छात्र कक्षाओं में विभिन्न पृष्ठभूमियों से आए छात्रों को एक संसाधन की तरह देखें।

हालांकि इस संबंध में उपलब्ध आंकड़ों से पता चलता है कि कक्षाओं में विभिन्न पृष्ठभूमियों से आए छात्रों की संख्या तो बढ़ी है, मगर शिक्षकों की सामाजिक रूपरेखा कमोबेश पहले जैसी ही रही है। शिक्षकों की फौज में महिलाओं, अनुसूचित जातियों, जनजातियों और धर्म, समुदाय और भाषायी अल्पसंख्यकों को भर्ती करने की प्रक्रिया हमेशा से ढीली-ढाली ही रही है। हालांकि हाल के वर्षों में इन सामाजिक वर्गों से जिन शिक्षकों की भर्तियां हुई भी हैं, वे पारा शिक्षक हैं जो औपचारिक शिक्षक प्रशिक्षण संरचना (गोविंदा, 2005) से दूर रहे हैं। साथ ही ऐसे शिक्षकों की सीमित शैक्षणिक योग्यता और पेशेवर प्रशिक्षण का अभाव उनके करियर के विकास में अवरोध पैदा कर रहा है।

चुनौती 6 – संघटित स्कूल-समुदाय संबंधों का विकास।

कक्षाओं में विविधता से बेहतर ढंग से निपटने की एक रणनीति अभिभावकों और समुदाय को स्कूल के संचालन में शामिल करना है। यह भी समझना जरूरी होगा कि स्कूलों में विभिन्न पृष्ठभूमियों से आए छात्रों की संख्या बढ़ रही है और ऐसे में स्कूलों को भी यह समझना होगा कि वे सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिदृश्यों में अभिभावकों और समुदायों की भागीदारी को समझें। सामुदायिक भागीदारी सुनिश्चित करने की मौजूदा औपचारिक प्रणालियों और ढांचों (वीईसी और पीटीए आदि) से अपेक्षित परिणाम हासिल होते नजर नहीं आते, खासतौर पर जब बात अल्पसंख्यक और बाहर किए गए समुदायों की भागीदारी की हो। कई गांवों में तो स्थानीय लोगों को वीईसी के अस्तित्व, उनकी भूमिका और उनकी जिम्मेदारियों का पता तक नहीं है। कई दफा तो ये वीईसी स्थानीय समाज के प्रभावशाली वर्ग के लिए ही मंच का काम करने लगते हैं और अल्पसंख्यक और हाशिये पर खड़े समुदाय खुद को शक्तिहीन महसूस करने लगते हैं और उनके लिए स्कूल के कामकाज में दखल देना और उनसे जुड़े मामलों में आवाज उठाना मुश्किल हो जाता है।

उम्मीद की किरण

ऊपर सर्वशिक्षा की जिन चुनौतियों और विविधताओं का जिक्र किया गया वे इतनी विकट इसलिए जान पड़ती हैं क्योंकि प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में मुख्यधारा की नीतियां और जो अभ्यास हैं वे अपने-आप में पर्याप्त नहीं हैं और इन चुनौतियों को समझ नहीं पाए हैं। वहीं दूसरी ओर एक अच्छी खबर यह है कि हाल के दशक में इन मसलों की ओर पेशेवरों और नीति-निर्माताओं के एक वर्ग का ध्यान जाने लगा है। स्कूल सुधारों की दिशा में देश के अनेक हिस्सों में नागरिक संगठनों और यहां तक कि सरकारी

बॉक्स 1.4

कक्षा में विभिन्नता के जरिए शैक्षणिक उपलब्धियों का विकास

बिहार के गया जिले के वजीरगंज प्रखंड के दो ग्रामीण सरकारी प्राथमिक स्कूल बड़का बांध प्राथमिक विद्यालय और मझौली प्राथमिक विद्यालय में देशकाल सोसायटी ने एक नवाचारी स्कूल सुधार कार्यक्रम की शुरुआत की थी। बड़का बांध विद्यालय मुसहर समुदाय के एक गांव में है और यहां पढ़ने वाले छात्र वंचित समुदाय, खासतौर पर दलित, मुसहर और अन्य निम्न जातियों से हैं। मझौली विद्यालय एक ऊंची जाति के गांव में है और यहां पढ़ने वाले 79.53 फीसदी छात्र वंचित तबके के हैं। बड़का बांध विद्यालय में पढ़ने वाले छात्रों में 44 फीसदी लड़के और 56 फीसदी लड़कियां हैं, जबकि मझौली विद्यालय में 57 फीसदी लड़के और 43 फीसदी लड़कियां हैं। बड़का बांध विद्यालय में सात शिक्षक और मझौली विद्यालय में चार शिक्षक हैं।

यह एक सतत शोध कार्यक्रम है जिसकी शुरुआत दो स्कूलों में एक प्रायोगिक अध्ययन के तौर पर हुई जिसमें जोर इस बात को समझने पर था कि बच्चों, खासतौर पर वंचित समुदाय के बच्चों, की शैक्षणिक विफलता के पीछे स्कूल की कौन-सी गतिविधियां जिम्मेदार हैं। इस कार्यक्रम का उद्देश्य स्कूलों की भागीदारी को बढ़ाना और बच्चों, खासतौर पर अल्पसंख्यक समुदाय के बच्चों की शैक्षणिक उपलब्धियों को बढ़ावा देना है, और इसके लिए दो मसलों पर खास ध्यान दिया गया – (1) शिक्षकों में कक्षा की विभिन्नताओं और कमजारियों की समझ बढ़ाना और विभिन्न पृष्ठभूमियों से आए छात्रों की जरूरतों और उनकी क्षमताओं से कैसा व्यवहार किया जाए, इसके लिए उन्हें तैयार करना और (2) उन समावेशी शैक्षणिक अभ्यासों को अपनाना जो छात्रों को केंद्र में रखकर तैयार किए गए हैं, जो परिदृश्य के अनुकूल हैं और जिन्हें छात्र अपने जीवन के अनुभवों और सामाजिक-आर्थिक परिप्रेक्ष्यों से जोड़कर देख सकें।

विविधता और हाशिए के लोगों के बारे में शिक्षकों की समझ

इस प्रायोगिक अध्ययन से पता चला कि ज्यादातर शिक्षक यह मानते हैं कि बच्चों के सीखने की क्षमता उन संस्कारों पर निर्भर करती है जो उन्हें अपने माता-पिता से मिला है। इस मान्यता की वजह से शिक्षक यह मानते हैं कि वंचित समुदाय के बच्चों में सीखने की क्षमता कम होती है या फिर वे ज्यादा पढ़-लिख नहीं सकते। परिणामस्वरूप शिक्षकों को ऐसे बच्चों से बेहद कम या फिर नहीं के बराबर सीखने की उम्मीद रहती है। संस्कार या फिर पढ़ने-लिखने को लेकर इनके इसी पूर्वाग्रह के कारण शिक्षक-छात्र या फिर शिक्षक और समुदाय के बीच का संबंध खराब होता है और इससे स्कूल के पूरे वातावरण पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

ऐसा जान पड़ता है कि शिक्षकों को वंचितों के बारे में और सामाजिक-ऐतिहासिक परिदृश्य की बेहद कम समझ है। वे सामाजिक-आर्थिक विभेद और कक्षा में विविधता को नहीं समझ पाते। इस कार्यक्रम का एक मुख्य उद्देश्य शिक्षकों के साथ मिलकर काम करना और उनमें सामाजिक परिदृश्य की मौजूदा सच्चाई और कक्षा में विविधता की समझ पैदा करना है और उनके कौशल को बढ़ावा देना है ताकि वे हाशिए पर पड़े समुदाय के बच्चों की जरूरतों, उनकी क्षमताओं और उनके हितों को समझ सकें। अधिक ध्यान इस ओर है कि कैसे कक्षा में शिक्षण और ज्ञान-अर्जन के अभ्यास और प्रक्रिया को सुधारा जाए। इस प्रायोगिक अध्ययन से पता चला कि कक्षा में शिक्षण और ज्ञान हासिल करने की मौजूदा प्रणाली सिर्फ शिक्षक और किताबों के ईद-गिर्द केंद्रित है जहां पूरा जोर किताबों से रटने और कॉपी करने पर होता है। जो किताबें पढ़ाई जाती हैं उनमें ज्यादातर शहरी मध्य वर्ग और प्रभावशाली जातियों के सामाजिक और सांस्कृतिक ढांचे का जिक्र होता है।

समावेशी कक्षा में अध्ययन-अध्यापन की प्रक्रिया और विधियां

वंचित समुदाय के बच्चे किताबों में लिखी बातों और अपनी जिंदगी और अपने अनुभवों के बीच कोई समानता नहीं पाते और इस कारण से उन बातों से खुद को जोड़ नहीं पाते। शिक्षक भी यह कोशिश नहीं करते कि जब वे पढ़ा रहे हों तो बच्चों को स्थानीय सामाजार्थिक तथ्यों का उदाहरण दें। इस तरह की शिक्षण-प्रणाली बच्चों को हतोत्साहित करती है और उनकी ज्ञान-अर्जन की क्षमता और उपलब्धियों पर नकारात्मक असर डालती है, धीरे-धीरे वे स्कूल से दूर होते जाते हैं। यह कार्यक्रम शिक्षकों, छात्रों, अभिभावकों और समुदायों के साथ मिलकर काम करता है ताकि ऐसी शिक्षण-प्रणाली का विकास किया जा सके जो समावेशी बच्चों को केंद्र में रखकर तैयार की गई हो और जो बच्चों के विविध सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से जुड़ाव रखती हो। शिक्षकों, अभिभावकों और समुदाय के सदस्यों के साथ मिलकर, कक्षाओं के अवलोकन और कार्यशाला के जरिए शिक्षण की भिन्न प्रणालियों का पता लगाया जाता है। शिक्षकों की मदद की जाती है ताकि वे बच्चों के जीवन के अनुभवों और उनके सामाजिक और आर्थिक जानकारी के बारे में समझ विकसित कर सकें। इस प्रक्रिया के तहत बच्चों के ज्ञान का स्तर किताबी बातों के जरिए नहीं किया जाता, बल्कि शिक्षक बच्चों से कहते हैं कि वे अपनी रोजमर्रा की जिंदगी और अपने पास-पड़ोस से संबंधित विभिन्न मसलों के बारे में जो जानकारी रखते हैं उसके बारे में लिखें। इन अभ्यासों से छात्र जो अनुभव और जानकारी हासिल करते हैं उन्हें लिखित रूप में रखा जाता है, उन पर चर्चा की जाती है और शिक्षक उनका विश्लेषण करते हैं और फिर विभिन्न विषयों, जैसे गणित और भाषा विषयनिष्ठ शिक्षण-प्रणाली तैयार की जाती है ताकि छात्रों का ज्ञान और उनकी योग्यता बढ़े।

सामुदायिक भागीदारी

इस प्रायोगिक अध्ययन से पता चला कि शिक्षकों का यह मानना कि बच्चों के ज्ञान-अर्जन की क्षमता इस बात पर निर्भर करती है कि उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि क्या है और इसे उनके संस्कारों के साथ जोड़ना भी शिक्षकों और अभिभावकों, खासतौर पर वंचित समुदाय के अभिभावकों, के बीच गतिरोध का कारण बना। यही वजह है कि स्कूल और समुदायों के बीच एक बेहतर संबंध स्थापित करना बेहद जरूरी समझा गया। इस कार्यक्रम के जरिए जो पहल की गई उसी का नतीजा है कि अभिभावकों और समुदाय के सदस्यों, खासतौर पर वंचित समुदाय ने स्कूल की योजना और प्रबंधन से जुड़े फैसला लेने की प्रक्रिया में हिस्सा लेना शुरू कर दिया। इनकी सक्रिय भागीदारी की वजह से ही इस कार्यक्रम के जरिए मिड डे मील और पेयजल की सुविधा का सफल प्रावधान किया जा सका जिनका पहले इन दो स्कूलों में ठीक तरह से क्रियान्वयवन नहीं हो पा रहा था। इन दोनों स्कूलों में लंबे समय से वीईसी निष्क्रिय पड़ी थी। इस कार्यक्रम की पहल के जरिए दोनों स्कूलों में नई वीईसी का गठन किया गया और उनके सदस्य स्कूल की कार्यपद्धति की लगातार निगरानी कर रहे हैं। इन घटनाओं का सकारात्मक असर साफ नजर आता है। दोनों ही स्कूलों में छात्रों की उपस्थिति में खासी बढ़ोतरी हुई है।

शिक्षण सहायता केंद्र

मौजूदा शिक्षण-प्रणाली की एक प्रमुख मान्यता है कि पढ़ने-लिखने की आदत डालने में बच्चों को उनके घरों या अभिभावकों से सहयोग मिलेगा। हालांकि जिन परिवारों की पहली पीढ़ी पढ़ रही है या फिर गरीब या मजदूरों के बच्चे या अल्पसंख्यक समुदाय के बच्चे घरों में मिलने वाले इस मार्गदर्शन से वंचित रह जाते हैं। इन बच्चों को अतिरिक्त शिक्षण-सहायता की जरूरत होती है, खासतौर पर शुरुआत में ताकि वे शिक्षण-प्रक्रिया से तालमेल बिठा सकें। शिक्षण-सहायता केंद्रों के जरिए उन्हें यह सहायता दी जाती है। ये सहायता-केंद्र समुदाय और अभिभावकों के सक्रिय भागीदारी से गठित किए गए हैं और इन्हें चलाया जा रहा है। इन शिक्षण-सहायता केंद्रों की कार्यपद्धति पर नजर रखने के लिए नियुक्त किए गए सभी चार शिक्षा स्वेच्छाकर्मी दलित समुदाय के हैं

और इनमें से तीन तो सर्वाधिक वंचित मुसहर समुदाय से हैं। अल्पसंख्यक और गैर-अल्पसंख्यक दोनों ही समुदायों की ओर से इन सहायता केंद्रों को उत्साहजनक प्रतिक्रिया मिली है और दिलचस्प रूप से दोनों ही समुदायों के अभिभावकों ने शिक्षण-सहायता केंद्रों के लिए शिक्षा स्वेच्छाकर्मियों को नियुक्त किए जाने पर जोर दिया। ये घटनाक्रम बच्चों में जाति और समुदाय के बंधनों को तोड़ने में मदद करेंगे। ये सहायता केंद्र मुख्य रूप से भाषा और गणित विषय में बच्चों की मदद करते हैं। शिक्षण स्वेच्छाकर्मियों का जोर तीन पहलुओं पर होता है – चूंकि छात्र विविध पृष्ठभूमि के हैं इसलिए जिनका प्रदर्शन कमजोर है उन पर खास ध्यान देना, शिक्षण सहायता केंद्रों में चलाई जा रही शिक्षण-गतिविधियां स्कूली शिक्षा के अनुरूप हों और शिक्षण स्वेच्छाकर्मियों को ऐसे बच्चों की पहचान करनी चाहिए जो नियमित तौर पर स्कूल नहीं आ रहे हैं और ऐसे बच्चों और उनके अभिभावकों को प्रोत्साहित किया जाए ताकि ऐसे बच्चे नियमित स्कूल जाएं।

अध्यापकों की शिक्षा के लिए कार्यक्रम का विकास

इस कार्यक्रम के आखिर में एक सबसे महत्वपूर्ण बात सामने निकलकर आती है और वह है विविधता और वंचितता पर अध्यापकों की शिक्षा के लिए एक कार्यक्रम का विकास। कक्षा में विविधता और वंचितों के विभिन्न पहलुओं से जुड़े विषयपरक मुद्दे, इन्हें शिक्षण-प्रणाली में किस तरह आत्मसात् किया गया है, इन मुद्दों की समाज के बड़े तबके से संबंधों पर चर्चा, विभिन्न हितधारकों जैसे शिक्षकों, अभिभावकों, बच्चों, समुदाय के प्रतिनिधियों से हर पखवाड़े में कार्यशाला के जरिए इनका विश्लेषण। यह कार्यक्रम न केवल इन मसलों पर शिक्षकों की समझ और जागरूकता को बढ़ाएगा बल्कि विषयनिष्ठ व्यावहारिक सुझावों के विकास में भी मदद करेगा जिससे शिक्षकों को कक्षा के वास्तविक माहौल को समझने में मदद मिलेगी।

क्षेत्रों ने भी नए प्रयोग किए हैं। इन प्रयोगों में पाठ्यक्रम-डिजाइन, शिक्षण-पद्धतियों और सामग्रियों का विकास और बच्चों को केंद्र में रखकर सर्वशिक्षा के लिहाज से शिक्षकों को तैयार करना शामिल है। इन प्रयोगों की वजह से विभिन्न पृष्ठभूमियों से आए छात्रों की शिक्षा उपलब्धियों को लेकर बेहतर नतीजे सामने आए हैं। उदाहरण के लिए, पश्चिम बंगाल के सियालदह में लॉरेटो डे स्कूल में विभिन्न किस्म की शिक्षण और शिक्षा ग्रहण करने की प्रणालियां अपनाई गई हैं ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि कक्षा में सभी छात्र बुद्धिमत्तापूर्ण शिक्षा हासिल कर सकें। कार्यकलाप-संबंधी शिक्षण प्रणाली और स्थानीय संसाधनों के इस्तेमाल पर जोर दिया जाता है। स्कूल बच्चों की विभिन्न संस्कृतियों के प्रति संवेदनशील है और सभी संस्कृतियों को प्रोत्साहन देता है और उनके प्रति बच्चों को गौरवान्वित महसूस कराता है। स्कूल को गरीब छात्रों के साथ होने वाले भेदभाव को पता है और इसलिए स्कूल उन्हें प्राथमिकता देने से पीछे नहीं हटता। स्कूल हर छात्र की गरिमा को लेकर फिक्रमंद है और इसलिए उन सभी मौजूदा ढांचों की जांच करता है और ऐसी हर उस अनियमितता को दूर करता है जिससे छात्रों में कुंठा का भाव पैदा हो सकता है। स्कूल का पाठ्यक्रम संपन्न छात्रों को समाज के कमजोर तबके के छात्रों के साथ मिलने-जुलने और उनसे संबंध बनाने को प्रेरित करता है। कमजोर तबके के छात्र अपने घरों या सड़कों के जो अनुभव लेकर आते हैं उनसे इन संपन्न परिवारों के बच्चों को रू-ब-रू होने का मौका मिलता है। केयर इंडिया ने उत्तर प्रदेश के कुछ स्कूलों में समावेशी और समान शिक्षा को बढ़ावा देने के प्रयास किए हैं। सामाजिक संगठन जिन कार्यक्रमों को अमल में लाते हैं वे वास्तविक कक्षाओं में उन प्रक्रियाओं की पहचान करने को लेकर हैं जिनकी वजह से छात्र खुद को उपेक्षित महसूस करते हैं। शिक्षण और शिक्षा ग्रहण की गुणवत्ता, छात्रों के अनुभव, कक्षाओं में शिक्षकों का व्यवहार, बच्चों का आपसी व्यवहार, शिक्षण और शिक्षा ग्रहण की सामग्रियों का इस्तेमाल और बच्चों की शिक्षा संबंधी अलग-अलग जरूरतों पर निगरानी रखने के लिए कक्षाओं में पर्यवेक्षण टूल का इस्तेमाल किया जाता है। कक्षाओं में पर्यवेक्षण से जो बातें सामने निकलकर आती हैं

उनके आधार पर शिक्षकों को कक्षाओं में मदद दी जाती है ताकि वे सर्वशिक्षा प्रयासों और प्रक्रियाओं को अमल में ला सकें। हर महीने शिक्षकों के साथ बैठक में कक्षाओं के पर्यवेक्षण के आधार पर चर्चा और विश्लेषण किया जाता है ताकि शिक्षण अभ्यासों और प्रक्रियाओं में सुधार लाया जा सके।

एक और स्कूल सुधार कार्यक्रम की शुरुआत देशकाल सोसाइटी ने बिहार के गया जिले में दो सरकारी ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में की है। इस कार्यक्रम का पूरा ध्यान कक्षाओं में शिक्षण और शिक्षा ग्रहण प्रणालियों में सुधार की ओर है। यह कार्यक्रम शिक्षकों, बच्चों और समुदाय के सदस्यों के साथ मिलकर काम करता है ताकि परिदृश्यनिष्ठ अध्यापन और शिक्षा ग्रहण प्रणालियां विकसित की जा सकें, जो बच्चों को केंद्र में रखकर तैयार की गई हों, समग्र हों और बच्चों के विविध सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों को ध्यान में रखकर बनाई गई हों। कक्षाओं के पर्यवेक्षण, कार्यशालाओं और विभिन्न हितधारकों जैसे कि शिक्षकों, अभिभावकों, बच्चों और समुदाय के सदस्यों के साथ बैठक के जरिए हस्तक्षेप की प्रणालियों की पहचान की जाए और उन पर चर्चा की जाए।

शिक्षकों की मदद की जाती है ताकि पहले वे बच्चों के जीवन के अनुभवों और उनकी सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक माहौल की समझ पैदा कर सकें। इस प्रक्रिया में बच्चों की बुद्धिमत्ता का आकलन उनके किताबी ज्ञान और प्रतिस्पर्धा के आधार पर नहीं किया जाता बल्कि शिक्षक बच्चों को उनकी रोजमर्रा की जिंदगी से जुड़े अनुभवों के बारे में लिखने को कहते हैं। इन अभ्यासों से छात्र जो अनुभव और जानकारी हासिल करते हैं उन्हें लिखित रूप में रखा जाता है, उन पर चर्चा की जाती है और शिक्षक उनका विश्लेषण करते हैं और फिर विभिन्न विषयों जैसे कि गणित और भाषा विषयनिष्ठ शिक्षण प्रणाली तैयार की जाती है ताकि छात्रों का ज्ञान और उनकी योग्यता बढ़े।

शिक्षकों के प्रशिक्षण के क्षेत्र में सर्वशिक्षा अभियान ने उड़ीसा के जनजातीय इलाकों में प्राथमिक स्कूल के शिक्षकों के लिए रूपांतर नाम का चार दिवसीय शिक्षण मॉडल तैयार किया है और इसे अमल में लाया है। इस मॉडल का फोकस शिक्षकों के व्यावहारिक प्रशिक्षण और जनजातीय भाषा, संस्कृति और ज्ञान प्रणाली के प्रति उन्हें संवेदनशील बनाना है। सरकारी क्षेत्र की बात करें तो तमिलनाडु के प्राथमिक विद्यालयों में सर्वशिक्षा अभियान द्वारा चलाए गए क्रियाकलाप-आधारित कार्यक्रम को हाल के दिनों में अच्छा उत्साह देखने को मिला है। क्रियाकलाप आधारित यह प्रणाली गरीब बच्चों के शिक्षण-स्तर को सुधारने के लिए शुरू की गई थी। इस सुधार की सबसे बड़ी खासियत प्रणालियों के संदर्भ में कक्षाओं के बदलते स्वरूप, शिक्षकों की भूमिका और कक्षाओं के बदलते माहौल पर ध्यान देना है।

देश के अलग-अलग हिस्सों में जो प्रयास शुरू किए गए हैं उनसे उम्मीद की किरण नजर आती है। इन प्रयासों से जो सकारात्मक और आलोचनात्मक बातें सामने निकलकर आती हैं उन्हें दस्तावेजों का रूप देने, उन्हें साझा करने और एक रणनीति का विकास किए जाने की जरूरत है ताकि सर्वशिक्षा और विविधता से जुड़ी चुनौतियों को दूर किया जा सके। ❑

पाद टिप्पणियां

1. यह किस्सा मीनाक्षी थापन के शोध कार्य (2006) से लिया गया है।

2. लेखक ने ये अनुभव स्कूल एजुकेशन, प्लुरलिज्म एंड मार्जिनैलिटी: कैम्पैरीटिव पर्सपैक्टिव, 2007, नई दिल्ली नाम के अपने प्रबंध में बांटे हैं।

संदर्भ

अहमद सज्जाद, 2005, सोशल एक्सपीरिएंसेज एंड स्कूलिंग: ए स्टडी ऑफ द मियो मुस्लिम गर्ल चाइल्ड, अनपब्लिश्ड एम. फिल. डिसर्टेशन, सेंट्रल इस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन, दिल्ली विश्वविद्यालय।

बोस, ए बी, 1992, द डिसएडवांटेज्ड अर्बन चाइल्ड इन इंडिया, इन्नोसेंटी ओकेजनल पेपर्स, द अर्बन चाइल्ड सीरीज नंबर एक, स्पेडेल डेग्ली, इन्नोसेंटी, फ्लोरेंस, इटली।

द्रेज, ज्यां और हरीश गाजदार, 1966। उत्तर प्रदेश : द बर्डेन ऑफ इनर्शिया ज्यां द्रेज एंड किंगडम में, गीता, 2001। स्कूल पार्टीशिपेशन इन रूरल इंडिया, रिव्यू ऑफ डिवेलपमेंट इकनॉमिक्स, 5।

एक्सप्रेस न्यूज सर्विस, 2000 बीएमसी फल्क्स स्कूल एज किड्स स्टे अवे, द इंडियन एक्सप्रैस, सितंबर 8.

भारत सरकार, 2009, बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियिम, न्याय और कानून मंत्रालय (विधायी विभाग)।

गोविंदा, आर (सं) 2002, इंडिया एजुकेशन रिपोर्ट, ओयूपी, नई दिल्ली।

गोविंदा, आर और जोस्पीन वाई, 2005, पाराटीचर्स इन इंडिया : अ रिव्यू कंटेपररी एजुकेशन डायलॉग, खंड 2, स्प्रिंग, पृ. 193-224

जैन, शिखा, 2006, प्राइमरी टीचर्स इन इंडिया : सोशल बैकग्राउंड एंड प्रोफेशनल स्टेटस, अनपब्लिश्ड एम. फिल. डिसर्टेशन, जाकिर हुसैन फॉर एजुकेशनल स्टडीज, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय।

कक्कड़, सुधीर, 1981 (दूसरा संस्करण) द इन वर्ल्ड : ए साइकोएनालिटिक स्टडी ऑफ चाइल्ड एंड सोसायटी इन इंडिया, दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

कुमार कृष्ण, 2010, कल्चर, स्टेट एंड गर्ल्स : एन एजुकेशनल पर्सपैक्टिव, इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, अप्रैल 24, वॉल्यूम XIV, संख्या 17, पृष्ठ 75 से 84.

मॅकवॉन, मार्टिन, 2002, दलित्स एंड एजुकेशन : द राइट स्टाफ, ह्यूमनस्केप, मई, पृष्ठ 17-22.

नाम्बिसन, गीता बी, 2001 सोशल डाइवर्सिटी एंड रीजनल डिसपैरीटीज इन स्कूलिंग : ए स्टडी एनसीईआरटी, छठा शैक्षिक सर्वे, 1993, नई दिल्ली, एनसीईआरटी।

प्रोब टीम, 1999, प्राइमरी एजुकेशन : ए पब्लिक रिपोर्ट, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

सिंह, पी डी और कुमार, संजय, 2010, सोशल हाइरार्की एंड नोशन ऑफ एजुकेबिलिटी : एक्सपीरिएंयस ऑफ टीचर्स एंड चिल्ड्रन फ्रॉम मार्जिनलाइज्ड एंड नॉन-मार्जिनलाइज्ड कम्युनिटीज, दलित स्टडीज-3, देशकाल सोसायटी, नई दिल्ली।

यूनेस्को, 2003, ओवरकमिंग एक्सक्लूजन थ्रू इन्क्लूसिव अप्रोच इन एजुकेशन : ए चैलेंज एंड ए विजन, पैरिस।

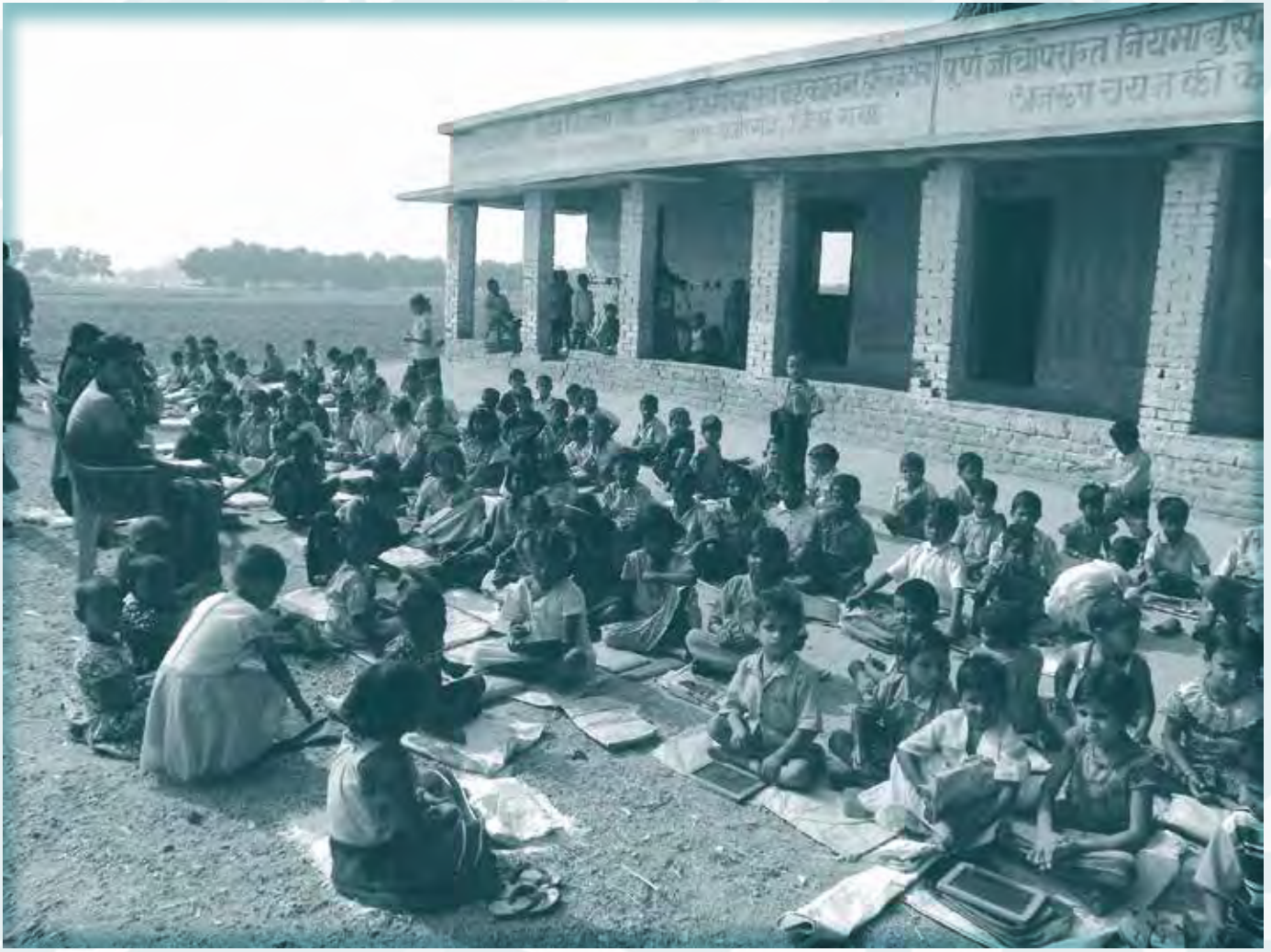

संस्कार

पी.डी. सिंह और संजय कुमार

वंचित तबकों – खासकर दलित और दूसरी निचली जातियों – के बच्चों के साथ जाति-आधारित भेदभाव और पूर्वाग्रह-भरा रवैया हमारे सरकारी विद्यालयों में होता रहा है। हालांकि, यह रवैया वक्त के अनुसार अपना रूप और संदर्भ बदलता रहा है, लेकिन इसने इन तबकों के बच्चों के विद्यालय में बने रहने पर बुरा असर डाला है। बहुत सारे दस्तावेज और रिपोर्ट हैं, जिनमें इन बच्चों के कक्षा और विद्यालय में हुए बदतरीन और दर्दनाक तजुर्बों की कहानी है।[1] भेदभाव, अपमान और शारीरिक हिंसा के विभिन्न तरीके हैं जो निचली जाति के, खासकर दलित समुदाय के, बच्चों को विद्यालय में झेलने होते हैं। कई दलित लेखकों ने अपनी आत्मकथाओं में अपना बचपन याद करते हुए इन सरकारी विद्यालयों के माहौल का बड़ा जीवन्त वर्णन किया है।[2]

इन कहानियों से पता चलता है कि कई शिक्षक, दलित और निचली जाति के बच्चों के साथ अपने रिश्ते में, विद्यालय में भी समाज के भेदभाव-भरे नजरिए, परंपरा और जातिगत ऊंच-नीच को बनाए रखना चाहते हैं। बहरहाल, पिछले दशक के दौरान सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में बच्चों की सामाजिक संरचना में काफी बदलाव आया है। आंकड़े बताते हैं कि बुनियादी शिक्षा के लिए पंजीकृत बच्चों की संख्या 2003 से 2009 के बीच 5.7 करोड़ से बढ़कर 19.2 करोड़ हो गई है, जबकि इसी अवधि में विद्यालय न जाने वाले बच्चों की संख्या 2.5 करोड़ से घटकर 81 लाख रह गई है।[3] दाखिले में इस बढ़ोतरी का बड़ा हिस्सा दलितों और दूसरी निचली जातियों जैसे ऐतिहासिक रूप से हाशिए पर पड़े और वंचित तबके से है। सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में बच्चों की संरचना अब मोटे तौर पर उस विद्यालय के आसपास की आबादी की सामाजिक संरचना का प्रतिबिम्ब होने लगा है। इस तरह, कहा जा सकता है कि पिछले एक दशक से सरकारी विद्यालयों में दलितों और अन्य निचली जातियों के बच्चों का समावेश करने की प्रक्रिया, कम से कम विद्यालयों तक पहुंच के मामले में, चल रही है। लेकिन, क्या इसका मतलब है कि विद्यालयों में जातिगत पूर्वाग्रहों और भेदभाव पर इस बदलती वास्तविकता का कोई खास असर पड़ा है? शिक्षक और हाशिए पर पड़े समुदाय के छात्रों के बीच के रिश्ते में जातिगत पूर्वाग्रहों की भूमिका के इस नाजुक सवाल पर, बिहार के दो सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में एक प्रारंभिक अध्ययन किया गया। इस अध्ययन ने साबित किया कि उस समावेशी प्रक्रिया के समांतर, स्कूलों में जाति-आधारित विलगाव अब भी प्रचलित है। हालांकि, यह सीधा-सीधा और प्रत्यक्ष न होकर अपने बारीक स्वरूप में है।[4]

यह अध्ययन बिहार में गया जिले के वजीरगंज प्रखंड में दो सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में किया गया।[5] यह प्राथमिक रूप से शिक्षकों के साथ विस्तृत साक्षात्कारों और अनौपचारिक बातचीत और कक्षाओं एवं विद्यालय के प्रेक्षणों पर आधारित था। इन विद्यालयों में से एक में सबसे ज्यादा आबादी मुसहरों की थी, जिनकी स्थिति हाशिए पर पड़े तबकों में से भी सबसे निचली है,[6] जबकि दूसरा विद्यालय बहुजातीय गांव में था, और जिनमें सामाजार्थिक रूप से सवर्ण राजपूतों का वर्चस्व था। इन गांवों के सभी समुदायों के बच्चों ने इन विद्यालयों में दाखिला लिया था। दाखिला लिए बच्चों के जातिवार आंकड़े इन गांवों में रह रहे समुदायों के अनुसार इस प्रकार हैं। (तालिका 1 और 2)

अधिकतर बच्चे (63.24 प्रतिशत) दलित समुदाय के थे। सिर्फ मुसहर समुदाय के बच्चों की संख्या ही कुल पंजीकृत बच्चों का

तालिका 1: विद्यालयों में दाखिला लिए बच्चों की सामाजिक श्रेणी

सामाजिक श्रेणी	बच्चों की संख्या और उनका प्रतिशत					
	विद्यालय 1		विद्यालय 2		कुल	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
सवर्ण	35	11.04	4	2.12	39	7.71
अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी)	4	1.26	79	41.80	83	16.40
अत्यंत पिछड़ी जातियां (ईबीसी)	18	5.68	46	24.34	64	12.65
अनुसूचित जाति (मुसहर को छोड़कर)	78	24.61	5	2.65	83	16.40
मुसहर	182	57.41	55	29.10	237	46.84
कुल	317	100.00	189	100.00	506	100.00

तालिका 2: विद्यालय वाले गांव में कुल घरों की सामाजिक श्रेणियां

सामाजिक श्रेणी	घरों की संख्या	प्रतिशत
सवर्ण	21	8.4
अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी)	42	16.8
अत्यंत पिछड़ी जातियां (ईबीसी)	32	12.8
अनुसूचित जाति (मुसहर को छोड़कर)	38	15.2
मुसहर	117	46.8
कुल	250	100.0

46.84 प्रतिशत थी। केवल 7.71 प्रतिशत बच्चे ही ऊंची जातियों के थे। 41.11 प्रतिशत बच्चों के मामले ऐसे थे, जिनके पिता कभी विद्यालय नहीं गए थे, जबकि 81.03 प्रतिशत बच्चों की मांओं ने विद्यालय का मुंह नहीं देखा था। अगर हम इस वर्ग में उन्हें भी जोड़ दें, जिन्होंने विद्यालयों में दाखिला तो लिया लेकिन कक्षा 5 में पहुंचने से पहले ही विद्यालय छोड़ दिया तो यह आंकड़ा बढ़कर क्रमशः 49.61 और 87.35 तक हो जाता है। यानी, पचास फीसदी बच्चे ऐसे थे जो पढ़ाई के मामले में अपने खानदान में पहली पीढ़ी के थे।

यही नहीं, इन बच्चों में से 62.65 प्रतिशत बच्चे भूमिहीन घरों से थे। अन्य 16.80 प्रतिशत अर्ध-भूमिहीन घरों से थे जिनके पास एक बीघा (भूमि के माप की स्थानीय इकाई) से कम जमीन थी। केवल, 3.16 प्रतिशत बच्चे ही ऐसे घरों के थे, जिनके पास पांच बीघा से अधिक जमीन थी। पिता के व्यवसाय के संदर्भ में, 43.48 प्रतिशत बच्चों के पिता अस्थायी मजदूरी करते थे और मुख्य रूप से खेती, ईंट भट्टों, स्थानीय निर्माण उद्योग वगैरह से जुड़े थे। अन्य 30.24 प्रतिशत बच्चों के मामलों में पिता का व्यवसाय खेती था। लेकिन, उनमें से सभी लोग भूमि वाले खेतिहर नहीं थे। उनमें से बड़ी संख्या छोटे बटाईदारों की थी, जिनकी आर्थिक स्थिति कुछ अस्थायी मजदूरों से अच्छी नहीं कही जा सकती है।

हमारे अध्ययन में, शिक्षकों में जड़ जमाई जातिगत पूर्वाग्रह की मानसिकता पाई गई, क्योंकि इसके पीछे की सोच संस्कार के विचारधारा से आती है। इसी धारणा की वजह से शिक्षक दलित और निचले तबके के बच्चों को आनुवंशिक रूप से 'अशिक्षित' मानते हैं। जब उनसे हाशिए पर पड़े समुदायों, खासकर मुसहर बच्चों, के असफल होने के कारणों के बारे में पूछा गया, उनमें से अधिकतर लोगों ने कहा कि इन बच्चों और इनके माता-पिता के संस्कार ही इसके लिए जिम्मेदार हैं। एक सामान्य उत्तर था, "ये बच्चे कैसे पढ़ेंगे, उनके संस्कार ही नहीं हैं।" जैसा कि एक विद्यालय शिक्षक ने बताया – "मुसहर बच्चों के पढ़ाई में असफल होने की वजह उनके संस्कार ही हैं, क्योंकि उनके मां-बाप के संस्कार उनके बच्चों में आते हैं और बच्चे अपने मां-बाप में अपने-आपको देखने लगते हैं।"

जब उनसे कहा गया कि वे इस बात को विस्तार से बताएं कि किस तरह संस्कार इन बच्चों की शिक्षा में अपनी भूमिका निभाता

है तो शिक्षकों ने इसका वर्णन करने के लिए विभिन्न कारकों का सहारा लिया। मिसाल के तौर पर, माता-पिता में शिक्षा की कमी, गरीबी, घर का माहौल, साफ-सफाई की कमी वगैरह। शिक्षकों द्वारा दिए गए इन अंतर से इसे समझा जा सकता है –

"शिक्षा में मुसहर बच्चों के पिछड़ने की वजह उनके माता-पिता का निरक्षर होना है। यहां तक कि ये माता-पिता अगर अपने बच्चों को शिक्षित भी करना चाहते हैं, तो गरीबी की वजह से ऐसा नहीं कर पाते। इन माता-पिताओं के संस्कार ऐसे हैं कि वे अपने बच्चों को विद्यालय भेजने की बजाय उनको काम पर भेज देते हैं।"

"संस्कार की कमी की वजह से मुसहर माता-पिता अपने बच्चों को शिक्षित बनाने पर ध्यान नहीं देते। शिक्षा की कमी, गंदे रहन-सहन और गरीबी की वजह से खुद माता-पिताओं में ऐसे संस्कार नहीं होते, जो शिक्षा के लिए जरूरी है।"

यह दृष्टिकोण और विश्वास न सिर्फ गैर-दलित शिक्षकों के बीच है, बल्कि ऐसा ही दलित समुदाय के शिक्षकों का भी मानना है। एक दलित शिक्षक ने बताया, ''उनके संस्कारों की वजह से ही वंचित तबके के माता-पिता अपने बच्चों की शिक्षा-दीक्षा में दिलचस्पी नहीं लेते। उनके संस्कार उनके नजरिए में भी दिखते हैं। इन अभिभावकों में शिक्षा की कमी शुरू से ही उनके संस्कार से जुड़ी है।''

इन शिक्षकों के उत्तरों में उल्लेखनीय है कि वंचित तबके के बच्चों की शिक्षा में पिछड़ेपन के कारणों को बताते हुए उन्होंने गरीबी, माता-पिता में शिक्षा की कमी और घर में अच्छे माहौल की कमी की ओर इशारा किया। लेकिन, इन कारकों को सीधे शैक्षिक रूप से पिछड़ने से जोड़ने की बजाय शिक्षकों ने इन कारकों को संस्कार से जोड़ दिया, जो शिक्षा और सीखने के अनुकूल नहीं है। उनका तर्क था कि इन बच्चों के शैक्षिक रूप से विफलता की वजह संस्कार की कमी है। अगर संस्कार का अर्थ 'सांस्कृतिक' या 'सामाजिक स्थिति' से लगाया जाता, जो सीधे सामाजार्थिक स्थिति से जुड़ता तो स्थिति शायद कम समस्यापूर्ण होती। तब यह तर्क दिया जा सकता था कि अपनी गरीबी और निरक्षरता की वजह से उनके पास उस सांस्कृतिक पूंजी की कमी है, जो उनके बच्चों के लिए मौजूदा विद्यालयी व्यवस्था में कामयाब होने के लिए जरूरी है।

संस्कार की धारणा में यह विश्वास तब समस्यामूलक हो जाता है जब शिक्षक इसे समुदाय का आनुवंशिक गुण मानना शुरू कर देते हैं। जब आगे विस्तार से बताने को कहा गया, एक शिक्षक ने दावा किया कि संस्कार तो वंशानुगत स्वभाव होता है, जबकि एक दूसरे ने इसे किसी के 'रक्त' से जोड़ा, यानी संस्कार एक गुणसूत्रीय स्वभाव होता है। जब शिक्षकों से पूछा गया कि किसी का संस्कार कैसे बनता है, तो इसके वंशानुगत होने पर उनका भरोसा और साफ होकर सामने आ गया। नीचे दिए गए उत्तर शिक्षकों की धारणा का प्रतिनिधित्व करते हैं –

"किसी बच्चे का संस्कार उसकी मां के गर्भ में ही बनना शुरू हो जाता है। जन्म के बाद, यह माता-पिता के संस्कारों, जीवनशैली और उसके समुदाय और समाज के वातावरण से विकसित होता है।"

"बच्चे अपने मां-बाप से संस्कार ग्रहण करते हैं। अगर मां-बाप के संस्कार अच्छे हैं, तो बच्चे के संस्कार भी अच्छे होंगे।"

इस तरह, शिक्षकों में से ज्यादातर के मुताबिक संस्कार वंशानुगत गुण होता है, जो माता-पिता से बच्चों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थानांतरित होता है। यही नहीं, शिक्षक अच्छे संस्कार को शैक्षिक योग्यता से भी जोड़ते हैं, और इस बारे में एक चक्रीय तर्क देते हैं – ''अच्छे संस्कार शिक्षा से आते हैं और शिक्षा बिना अच्छे संस्कारों के मुमकिन नहीं है।'' वंचित तबके के अभिभावक अनपढ़ हैं, अलबत्ता उनके पास अच्छे संस्कार नहीं हैं। चूंकि, उनके खुद के पास ही अच्छे संस्कार नहीं हैं, इसलिए अपने बच्चों में भी वे अच्छे संस्कार नहीं जगा सकते। परिणामस्वरूप, उनके बच्चों के पास अच्छे संस्कार नहीं होते और इस तरह ये बच्चे सीखने और पढ़ने के काबिल नहीं। मूलतः क्योंकि, संस्कार आनुवंशिक गुण हैं, इसलिए ये बच्चे आनुवंशिक रूप से पढ़ने के काबिल नहीं। इन चक्रीय तर्कों के जरिए शिक्षक ने वंचित तबकों के बच्चों के बारे में अपनी धारणा गढ़ी कि ये सीखने और पढ़ने के काबिल नहीं हैं।

हालांकि इस नजरिया की ही प्रमुखता थी, लेकिन ऐसा नहीं कि इस धारणा को चुनौती न मिली हो। कुछ शिक्षकों ने, खासकर वंचित तबके के शिक्षकों ने, इस हावी रही धारणा को खारिज कर दिया, उन्होंने तर्क दिया कि अध्यापन की गुणवत्ता जैसे विद्यालयी कारक ही इन बच्चों में शैक्षिक विफलता के लिए जिम्मेदार हैं। एक दलित शिक्षक ने तीन कारकों की पहचान की – पढ़ाने और सिखाने का नीरस तरीका, शिक्षकों में पेशेवर कुशलता की कमी और डराने के सिद्धान्त पर टिकी अध्यापन शैली। एक अन्य शिक्षक ने कहा – ''मुसहर समुदाय के बच्चों की शैक्षिक विफलता के पीछे

माता-पिता के संस्कार जिम्मेदार नहीं हैं। यह पाया गया है कि इस कथित संस्कार से हीन लोगों के बच्चे भी महान विद्वान और विचारक बने हैं। गरीबी और इससे जुड़ी बाध्यताओं ने इन बच्चों को शिक्षा से दूर कर रखा है। आज मुसहर समुदाय का हर आदमी इस बात को लेकर जागरूक है कि उनके बच्चों को भी शिक्षा की जरूरत है।''

यह प्रतीत होता है कि वंचित तबकों में अपने बच्चों की शिक्षा को लेकर जागरूकता बढ़ने की वजह से बहुसंख्यक शिक्षकों की शिक्षणीयता से जुड़ी आनुवंशिकता की धारणा जातिगत रूप से खुले तौर पर नहीं कही जाती, बल्कि इन भावनाओं को चक्रीय तर्कों की आड़ में छिपाकर संस्कार और शिक्षा के बीच के रिश्ते को प्रकट किया जाता है। बहरहाल, संस्कार की धारणा को पुष्ट करने वाला 'शुद्धता' और 'अशुद्धता' का जाति-आधारित सिद्धांत सतह पर आ ही जाता है जबकि शिक्षक वंचित तबके को पारंपरिक व्यवसाय को संस्कार से जोड़ने लगते हैं।

मिसाल के तौर पर, बड़ी संख्या में शिक्षकों का मानना था कि हालांकि सूअर पालना एक गंदा व्यवसाय है, और बुरे संस्कारों की निशानी है, फिर भी मुसहर समुदाय को सूअर पालते रहना चाहिए क्योंकि उनके भीतर इसी तरह के संस्कार हैं। इस बारे में शिक्षकों के उत्तर नीचे दिए गए हैं और बहुत कुछ कह जाते हैं: मुसहरों का संस्कार कुछ ऐसा है कि वे सूअर पालने को अच्छा मानते हैं..... उनके संस्कार ही ऐसे हैं कि वे सूअर का मांस खाते हैं.... और इसे गंदा नहीं मानते। सूअर पालने की वजह से मुसहर समुदाय के माता-पिताओं और बच्चों में कभी अच्छे संस्कार विकसित नहीं हो सकते।

शिक्षकों की एक बड़ी संख्या मुसहरों को 'गंदा' मानती है : सूअर पालन का उनका पारंपरिक व्यवसाय 'प्रदूषणकारी' माना जाता है, और माना जाता है कि गंदा मुसहर समुदाय सूअर पालन के इस गंदे काम में अपने आनुवंशिक संस्कारों की वजह से लगा है। यह हमें विभिन्न विद्वानों द्वारा वर्णित 'शुद्धता और अशुद्धि' के जाति-व्यवस्था के बुनियादी संरचनात्मक तंत्र की याद दिलाता है[7] जिसमें 'शुद्ध' उच्च जातियों के पारंपरिक व्यवसाय भी 'शुद्ध' माने जाते थे और 'अशुद्ध' निचली जातियों के 'अशुद्ध'। ऐसे में संस्कार की धारणा के पीछे के बुनियादी सिद्धांत पारंपरिक जाति-व्यवस्था जैसे ही हैं। पारंपरिक जाति-व्यवस्था में निचली जातियों को सीखने और शिक्षा के लिए अयोग्य माना जाता था, क्योंकि पढ़ाई और शिक्षा को शुद्ध पेशा माना जाता था। इसी तरह, आज के शिक्षकों को विश्वास है कि दलित या मुसहर वर्ग के बच्चों में भी पढ़ाई-लिखाई के संस्कार नहीं हैं। हमारे अध्ययन में शामिल विद्यालयों में से एक में कार्यरत शिक्षकों में से एक दावे के साथ कहते गए, "कोई उन लोगों के मानसिक विकास का सपना भी नहीं देख सकता, जो लोग सूअर पालने के काम में लगे हों।" इस तरह हालांकि शिक्षकों ने वंचित तबके के बच्चों की शैक्षिक विफलता के बारे में वर्णन करते हुए सीधे-सीधे जाति का संदर्भ तो नहीं दिया, लेकिन जाति-आधारित नजरिया और धारणाएं ही हैं, जिन पर संस्कारों की उनकी आस्था टिकी है। हालांकि शिक्षक विद्यालयों में जाति की भूमिका पर सीधे चर्चा करने के अनिच्छुक थे। उन्होंने जोर दिया कि विद्यालयों में बच्चों की जातीय पहचान से कोई फर्क नहीं पड़ता, और हर बच्चे के साथ बराबरी का व्यवहार किया जाता है। इस बात को झुठला देती है विद्यालयों की वह बाल-पंजिका, जिसमें गांव के हर बच्चे के नाम के आगे जाति का उल्लेख किया जाता है। इस तरह विद्यालयों में बच्चे की जातीय पहचान स्पष्ट थी और विद्यालय का आधिकारिक अभिलेख इस बात की खुलेआम पुष्टि करता था और इसे महत्वपूर्ण भी मानता था।

वंचित तबके के बच्चों की संस्कार और पढ़ाई-लिखाई की आनुवंशिकता वाली इस धारणा ने शिक्षक-छात्र संबंधों के साथ ही विद्यालय के लोकाचार और वातावरण पर भी बुरा असर डाला है। हमारे अध्ययन में शामिल विद्यालयों में यह पाया गया कि शिक्षक खुले तौर पर वंचित तबके के बच्चों के साथ किसी भी भेदभाव या हिंसक गतिविधि में नहीं हैं। शिक्षकों का भेदभावपूर्ण रवैया, जैसे वंचित तबके के बच्चों को बेवजह और अत्यधिक पीटना या शारीरिक दंड देना, इन बच्चों को विद्यालय बुहारने जैसे कामों में लगाना, कक्षा में पीछे की कतार में बिठाना जैसे उदाहरण, जो दूसरे अध्ययनों में सामने आए थे, वह हमारे अध्ययन में शामिल विद्यालयों में मौजूद नहीं थे। इसकी बजाय, शिक्षकों में वंचित तबकों के बच्चों के प्रति एक उदासीनता-भरा रवैया था और इन बच्चों की पढ़ने-लिखने की उपलब्धियों के बारे में उनके मन में बेहद कम या बिल्कुल ही कोई उम्मीद नहीं थी।

विद्यालय और कक्षा में शिक्षकों द्वारा नजरअंदाज किया जाना इन बच्चों के आत्मविश्वास को बुरी तरह प्रभावित करता है और

उनको विद्यालय बीच में ही छोड़ने के लिए बाध्य करता है। यह पूरी प्रक्रिया किस तरह एक दुष्चक्र का रूप लेती है, यह इस पृष्ठ के चित्र में दिखाया गया है।

शिक्षकों द्वारा नजरअंदाज-भरा रवैया बच्चों को विद्यालय में बनाए रखने पर बुरा असर डालता है, साथ ही, खासकर, वंचित तबके के बच्चों की तालीमी बढ़त भी रोकता है। हमारे द्वारा अध्ययन किए गए दो विद्यालयों के कक्षावार दाखिले के आंकड़े (तालिका 3) दोनों ही विद्यालयों में बीच में पढ़ाई छोड़ने वालों की ऊंची दर दिखाते हैं। आंकड़े इशारा करते हैं कि एक ओर कक्षा 1 से 5 के बीच छात्रों की गिनती में लगातार कमी आती दिखती है और कक्षा 1 और कक्षा 4 के बाद यह दर काफी तेजी से बढ़ती है।

तालिका 3: बच्चों के दाखिले के कक्षावार आंकड़े

कक्षा	बच्चों की संख्या व प्रतिशत					
	स्कूल 1		स्कूल 2		कुल	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
कक्षा 1	153	48.26	69	36.51	222	43.87
कक्षा 2	52	16.40	43	22.75	95	18.77
कक्षा 3	46	14.51	40	21.16	86	17.00
कक्षा 4	46	14.51	23	12.17	69	13.64
कक्षा 5	20	6.31	14	7.41	34	6.72
कुल	317	100.00	189	100.00	506	100.00

बच्चों की शैक्षिक उपलब्धियों के सामाजिक रूप के आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। बहरहाल, कुछ अध्ययनों से मिले आंकड़े इस बात की तस्दीक करते हैं कि वंचित तबके के बच्चों में पढ़ाई-लिखाई का स्तर बेहद निम्न है। एनएसएसओ के आंकड़ों पर आधारित एक अध्ययन दर्शाता है कि पढ़ने और लिखने योग्य 6 से 14 साल तक के अनुसूचित जाति (58.2 प्रतिशत) और अन्य जातियों के बच्चों (72 प्रतिशत) में यह आंकड़ा अलग-अलग है।[8] साल 2001-2002 में पश्चिम बंगाल के कुछ चुनींदा प्राथमिक विद्यालयों में किए गए एक अन्य अध्ययन से पता चलता है कि अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और मुस्लिम जैसे सामाजिक वर्गों के बीच भी पढ़ने-लिखने में कामयाबी की दर में बड़ा अंतर है। कक्षा तीन और चार के करीब 13 प्रतिशत अनुसूचित जाति, 25 प्रतिशत मुस्लिम और 29 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति के बच्चे पढ़ नहीं सकते थे। बाकी की आबादी में यह अनुपात बमुश्किल आठ फीसदी था। इसी तरह, तीसरी और चौथी कक्षा के 'अन्य' श्रेणी के वैसे आठ प्रतिशत बच्चों की बनिस्बत 13 प्रतिशत अनुसूचित जाति, 27 प्रतिशत मुस्लिम और 43 प्रशित अनुसूचित जनजाति के बच्चे लिखना नहीं जानते थे।[9]

वंचित तबकों के बच्चों के अपवर्जन के विभिन्न चक्र

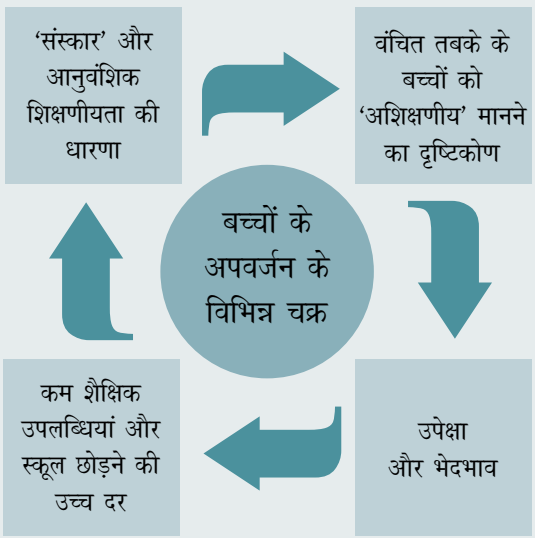

हालांकि, शिक्षकों के बीच पैठी संस्कार की धारणा और नजरअंदाज करने की प्रवृत्ति ने सभी समुदायों के बच्चों के पढ़ने के अनुभव पर बुरा असर डाला है, लेकिन वंचित तबके के बच्चों पर इसका खतरनाक रूप से प्रभाव पड़ा है। इस अलग किस्म के प्रभाव को समझने के लिए, यह ध्यान रखना होगा कि वंचित समुदाय के बच्चे ही सरकारी विद्यालयों में बहुसंख्या में पढ़ते हैं। दूसरे, मुख्यधारा के सरकारी विद्यालयों में अध्यापन का तरीका मुख्य रूप से 'होम-वर्क' पर आधारित होता है, जिसके लिए बच्चों को माता-पिता की ओर से पर्याप्त अकादमिक सहयोग की जरूरत होती है। इसके साथ ही, विद्यालय में अच्छा प्रदर्शन करने के वास्ते घर पर भी उचित संसाधनों का होना जरूरी है। चूंकि, वंचित तबके के बच्चे प्रायः

अपने खानदान में विद्यालय जाने वाले पहली पीढ़ी के होते हैं, और उनके घर के लोग मुख्यतया गरीब, अनपढ़ और दिहाड़ी मजदूर होते हैं, ऐसे में उन्हें घर पर इस तरह की अकादमिक सहायता नहीं मिल सकती। इन बच्चों के लिए घर की बजाय कक्षा और विद्यालय ही सीखने की मुख्य जगह होनी चाहिए। वंचित तबके के बच्चों के लिए कक्षा और विद्यालय को सुखद और सीखने लायक जगह बनाने के लिए और विद्यालयों में उनकी उपस्थिति बनाए रखने के साथ उनकी शैक्षिक उपलब्धियां अच्छी करने के लिए जरूरी है कि शिक्षणीयता की आनुवंशिकता से जुड़ी जाति-आधारित धारणा के मसले की पर्याप्त ढंग से पहचान की जाए और इससे उचित ढंग से निबटने के लिए रणनीतियां तैयार की जाएं। ❑

*पारंपरिक हिन्दू समाज में जीवन के विभिन्न चक्र के रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों को 'संस्कार' कहा जाता है – 'नामकरण संस्कार' (बच्चे का नाम रखना), 'विवाह संस्कार' (शादी), 'यज्ञोपवीत संस्कार (जनेऊ) 'दाह-संस्कार' (अंतिम क्रिया) वगैरह। इस पदानुक्रम में ऊंची जातियों को शुद्ध माना जाता है और उनके संस्कार भी शुद्ध और ऊंचे स्तर के माने जाते हैं। निचली जातियों को ऊंची जातियों के संस्कार अपनाने और व्यवहार में लाने का अधिकार नहीं है। चूंकि जाति-व्यवस्था जन्म पर आधारित है, इसलिए किसी व्यक्ति के किसी विशेष संस्कार का अधिकार इस तथ्य पर आधारित है कि वह किस जाति-विशेष में पैदा हुआ है। हाल के समय में संस्कार शब्द का प्रयोग आम लोगों द्वारा किसी व्यक्ति के ऐसे सामाजिक-सांस्कृतिक गुणों के बताने के लिए किया जाने लगा, जो उसे किसी खास जाति का सदस्य होने के नाते वंशानुगत रूप से हासिल हुआ है। जाति जन्म पर आधारित है और इसलिए, किसी व्यक्ति के संस्कार भी उसके जन्म के आधार पर तय कर दिए जाते हैं, जाहिर है, इसे बदला नहीं जा सकता।

पाद टिप्पणियां

1. प्रोब रिपोर्ट, ओयूपी, नई दिल्ली, 1999। गीता बी नाम्बिसन, 'सोशल डाइवर्सिटी एंड रीजनल डिसपैरिटीज इन स्कूलिंग: ए स्टडी ऑफ रूरल राजस्थान', ए. वैद्यनाथन और पी. आर. गोपीनाथन नायर (सं.), एलीमेंट्री ऐजुकेशन इन रूरल इंडिया: ए ग्रासरूट्स व्यू.! सेग पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2001, आर. गोविंदा, (सं.) इंडिया एजुकेशन रिपोर्ट, ओयूपी, नई दिल्ली, 2002: ज्यां द्रेज और हरीश गाजदार, 'उत्तर प्रदेश' : द बर्डन ऑफ इनर्शिया, ज्यां द्रेज और अमर्त्य सेन (सं.), इंडियन डिवेलपमेंट, ओयूपी, नई दिल्ली 1996: लाल बहादुर ओझा (सं), दलित, आदिवासी एंड स्कूल, समावेश, भोपाल, 2003: एम. मुरली कृष्णा, 'पीडागोनिक प्रैक्टिस एंड द वायलेंस अगेन्स्ट दलित्स इन स्कूलिंग', क्रिस्टीन स्लीटर, एट अल, (सं) स्कूल एजुकेशन, प्लुरलिज्म एंड मार्जिनालिटी: कॉम्पैरैटिन पर्सपैक्टिव, ओरियंट ब्लैकस्वान, दिल्ली 2012.
2. दादासाहेब मोरे, डेरादानगर, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 2001; एस. के. लिम्बावले, नर-वानर, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 2003; दया पवार, अछूत, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 2003; ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2003.
3. द वर्ल्ड बैंक, प्रेस रिलीज संख्या: 2010/304/एसएआर. द वर्ल्ड बैंक, वॉशिंगटन, डीसी, 2010.
4. यह अध्ययन साल 2009 के दौरान किया गया। हम इस अध्ययन के लिए वित्तीय सहायता मुहैया कराने के लिए डीआइएफडी इंडिया, नई दिल्ली के आभारी हैं।
5. विद्यालयों और उत्तर देने वाले शिक्षकों के नाम प्रकाशित नहीं किए गए हैं, ताकि उनकी पहचान और गोपनीयता बनी रहे।
6. मुसहरों की उत्पत्ति, जो बिहार और साथ लगे राज्यों में विभिन्न नामों से जाने जाते हैं, अभी भी विवाद का विषय है। औपनिवेशिक नृवंशवैज्ञानिक अभिलेखों में इनको इस इलाके की ओर बाहर की विभिन्न जनजातियों से जोड़ा जाता रहा है, जबकि नेसफील्ड (1888) ने इनकी उत्पत्ति को 'देवसी' के पौराणिक मिथकों के आधार पर छोटानागपुर के कोल और चेरू जनजातियों से जोड़ा है, जबकि रिसले (1891) की संकल्पना इस शब्द मुसहर के व्युत्पत्ति विषयक विवरण से आई है (चूहा पकड़ने वाले या चूहा खाने वाले) और वह इनकी उत्पत्ति दक्षिणी छोटानागपुर के द्रविड़ियन भुइयां लोगों से जोड़ते हैं। भारतीय नृवंशविज्ञानी एस. सी. रॉय (1935ए, 1935बी) इनको उड़ीसा के पुराने 'देश भुइयां' या 'पउरी भुइयां' की स्वतंत्र शाखा से जोड़ते हैं। इस बारे में विस्तृत जानकारी के लिए देखिए ज्ञान प्रकाश, (1990)।

7. लुइस ड्यूमॉन्ट, होमो हाइआरकियस, विकास प्रकाशन, दिल्ली 1971; जी. एस. घुर्ये, कास्ट एंड रेस इन इंडिया। पॉपुलर प्रकाशन, बॉम्बे, 2005 (1932).
8. ई. बार, एट अल, (सं) दलित्स इन इंडिया एंड नेपाल : ऑप्शन फॉर इम्प्रूविंग सोशल इन्क्लूजन इन एजुकेशन। डिवीजन ऑफ पॉलिसी एंड प्लानिंग पेपर्स, यूनीसेफ, न्यू यॉर्क, 2009.
9. प्रतीची इंडिया ट्रस्ट, द प्रतीची एजुकेशन रिपोर्ट II: प्राइमरी एजुकेशन इन वेस्ट बंगाल : चेंजेज एंड चैलेंजेज। द प्रतीची इंडिया ट्रस्ट, दिल्ली, 2009, पृष्ठ 11-16.

संदर्भ :

ज्ञान प्रकाश, बॉन्डेड हिस्ट्रीज: जीनॉलजीज ऑफ लेबर सर्वीट्यूड इन कॉलोनियल इंडिया, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1990

एच. एच. रिसले, ट्राइब्स एंड कास्ट्स ऑफ बंगाल, दो खंड, बंगाल सेक्रेटेरिएट प्रेस, कलकत्ता, 1891.

जॉन सी. नेसफील्ड, 'द मसहराज ऑफ सेंट्रल एंड अपर इंडिया', द कलकत्ता रिव्यू (171), 1888.

एस. सी. रॉय, 'रिपोर्ट ऑफ एन्थ्रोपॉलिजिकल वर्क इन 1930-31 : छोटानागपुर, द चुटियाज एंड भुइयाज', जरनल ऑफ द बिहार एंड उड़ीसा सोसायटी (18), 1935.

एस. सी. रॉय, हिल भुइयाज ऑफ ओरिसा, मैन इन इंडिया ऑफिस, रांची, 1935.

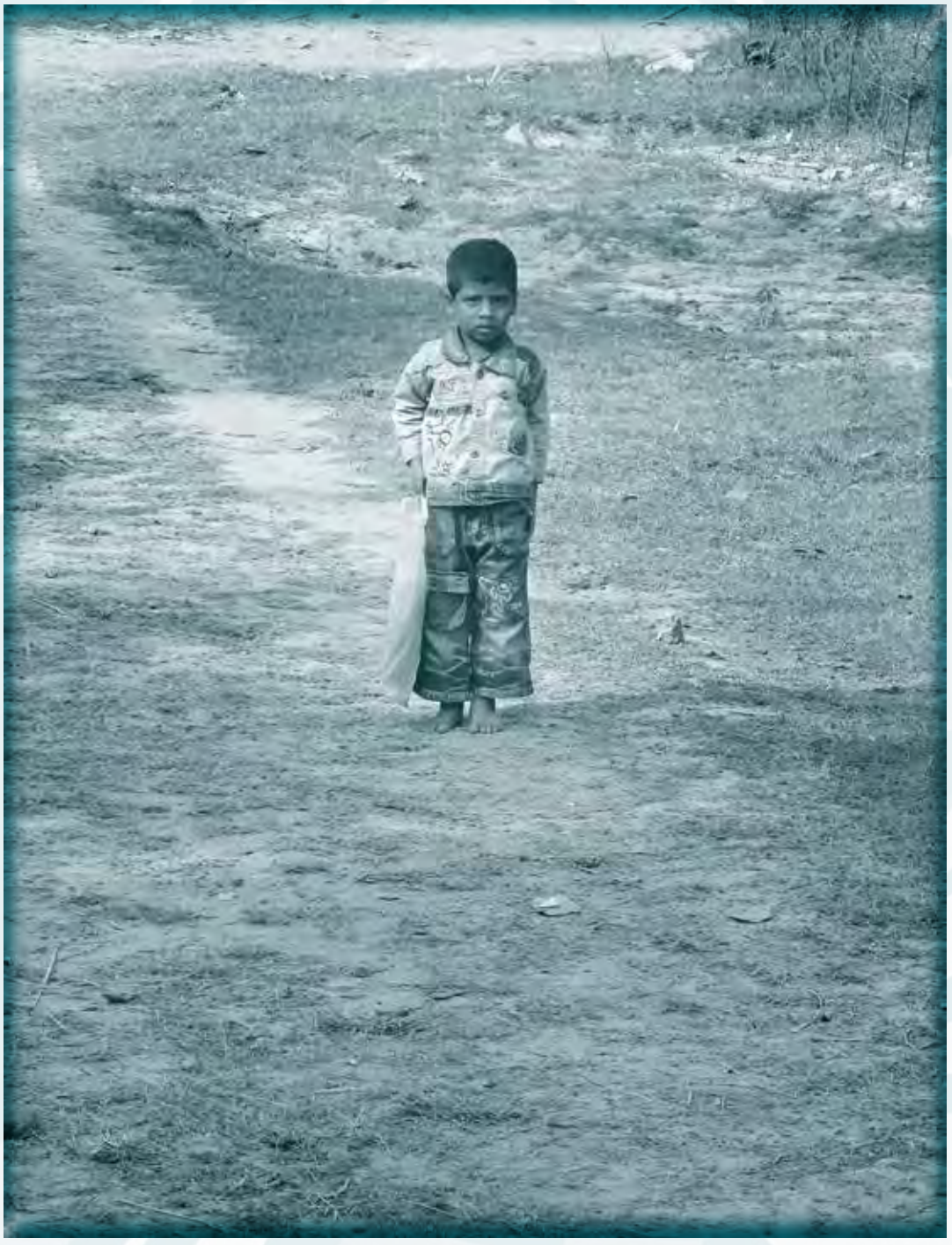

शिक्षा की ललक

ज्ञानदेव मणि त्रिपाठी

मुसहर समाज को एक ऐसी ही शिक्षा-व्यवस्था की आवश्यकता है जो उसे अपने-आपको समझने की अंतर्दृष्टि प्रदान करे। वे यह जान सकें कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक परम्परा से उन्हें जो ज्ञान प्राप्त हुआ है कि 'एक मुसहर यदि काम नहीं करेगा, तो जिन्दा नहीं रहेगा', इसकी विशद विवेचना ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में करनी चाहिए।

बिहार में गया के पास ही एक छोटा-सा गांव है या कहिए एक टोला है। सलेमपुर (बहोरा बिगहा)। पिछले दिनों कुछ कार्यवश इस टोले में कुछ समय बिताने और बच्चों-बड़ों से बतियाने का अवसर मिला। मैं 'आनंददायी शिक्षा निकेतन' से पढ़कर लौटे कुछ बच्चों से अनौपचारिक बातचीत करने लगा। पता चला– इस टोले में अधिकतम भुईंया लोग रहते हैं। यह बच्चे इसी टोले के थे और सभी भुईंया थे। बातों ही बातों में चर्चा चली कि इस बस्ती में कौन-कौन सूअर पालता है? मैंने देखा कि सभी बच्चे एक बच्चे की ओर देखने लगे और वह झेंपने लगा। पता चला कि 20 बच्चों के समूह में वह अकेला है जिसके घर में सूअर है। वह बच्चा अपने उस दोस्त से लड़ने लगा जिसने उसका नाम लेकर कहा था कि इसके घर में सूअर है।

झगड़े को शांत करने के लिए मैंने कहा कि कोई बात नहीं, सूअर पालने में क्या बुराई है? कुछ देर की चुप्पी के बाद कई बच्चे एक साथ मुखर हो गए। कुछ ने कहा– ''सूअर बहुत गंदा होता है। वह नाली में रहता है, गंदा खाता है और दूध भी नहीं देता।'' मेरे साथ गए एक मित्र ने पूछा– ''गाय भी तो हम लोग पालते हैं, फिर सूअर पालने में क्या बुराई है?'' जो बच्चा अब तक चुप था, जिसके घर में सूअर पाला जाता है, उसने बहुत साफ शब्दों में इन दो जानवरों का अन्तर स्पष्ट किया– ''गाय साफ सुथरी होती है। रोज दूध देती है। नाली में नहीं नहाती है। इसका गोबर खेत में डाला जाता है। उससे गोंइठा भी बनता है जिसपर खाना पकता है। गाय का दूध रोज बेचकर कुछ पैसा कमाया जा सकता है। सूअर गन्दा रहता है। इससे गोबर नहीं मिलता और न ही इससे दूध मिलता है। सूअर जब बड़ा होता है, तब एक बार बिकता है। अतः इससे कोई फायदा नहीं है।''

जिस मुसहर के पास रहने को घर नहीं है, खेत-पथार नहीं है, वह गाय कहां से खरीदेगा! फिर गाय को रखने के लिए अलग से घर, खिलाने के लिए भूसी-चूनी– इन सबकी व्यवस्था एक मुसहर नहीं कर सकता।

मैं गाय और सूअर के इस फर्क को समझने की कोशिश कर रहा था, तभी 15-16 साल का एक किशोर, जो थोड़ी दूरी पर खड़ा हमारी बातचीत सुन रहा था, अचानक बोल पड़ा– "गइया पोसतउ तोरा से (तुम गाय पाल सकोगे)?" फिर गाय का पालन-पोषण कितना महंगा है, उसने इसे बारीकी से समझाया। मोटे तौर पर उसकी बातचीत से जो निष्कर्ष निकला वह यह था कि जिस मुसहर के पास रहने को घर नहीं है, खेत-पथार नहीं है, वह गाय कहां से खरीदेगा! फिर गाय को रखने के लिए अलग से घर, खिलाने के लिए भूसी-चूनी– इन सबकी व्यवस्था एक मुसहर नहीं कर सकता। इसलिए वह सूअर पालता है, क्योंकि इसमें कोई खर्च नहीं है।

जहां तक मुझे याद है, बचपन से ही हमने कई परीक्षाओं में गाय पर निबंध लिखे होंगे, जिसकी पहली पंक्ति होती थी– गाय एक पालतू चौपाया पशु है। सूअर पर लेख लिखने का अवसर कभी नहीं आया। मुसहर बच्चों ने अपने अवलोकन पर आधारित

गाय और सूअर में जो फर्क बताया, मेरी बेहतर जानकारी में बिहार की प्रारंभिक कक्षा मे पढ़ाई जाने वाली पाठ्य-पुस्तकों में यह फर्क कहीं नहीं मिलेगा। यह उल्लेखनीय है कि 15-16 साल के जिस बच्चे ने इस फर्क को रेखांकित किया, वह 2001 की जनगणना में भी निरक्षरों में अपना नाम दर्ज कराएगा, क्योंकि अब तक उसके हिस्से कोई सरकारी या गैर-सरकारी स्कूल नहीं आया। यहां एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि ऐसे बच्चों को किस कोटि में रखा जाए? अनुभव से अर्जित इनके ज्ञान को महत्वपूर्ण माना जाए या नहीं? आधुनिक भारतीय शिक्षा ऐसे अभिवंचित समुदायों के अनुभव-जनित ज्ञान को शिक्षा के दायरे में शामिल नहीं करती है।

बच्चों के साथ बातचीत में मोटे तौर पर दो बातें उभरकर सामने आईं – (1) जो बच्चा स्कूल में पढ़ रहा है, वह सूअर पालने के नाम पर सोचता है, क्योंकि उसके अनुसार सूअर गंदा होता है। (2) दूसरा बच्चा, जो कभी स्कूल नहीं गया, गाय और सूअर के पालने के अर्थशास्त्र को जानते हुए कहता है – "सूअर पालना सस्ता है। इसलिए मुसहर लोग सूअर पालते हैं।"

गया और बोधगया में रहने वाले मुसहर हों या पटना के समीप दीघा में रहने वाले या पूर्वी चम्पारण के पहाड़पुर प्रखण्ड के रहने वाले – इस समाज के निरक्षर लोगों से बातचीत में यह तथ्य उभरता है कि वे अपने बच्चों को पढ़ाना चाहते हैं। जिनके बच्चे पढ़े-लिखे हैं, वे गर्व के साथ बताते हैं कि उनका बच्चा अमुक कक्षा पास कर आगे भी पढ़ रहा है।

ऐसे समाज में शिक्षा की उपयोगिता क्या और कैसे होगी, यह चिंतन का विषय है। मुसहरों की जो आर्थिक-सामाजिक दशा है, उसमें बहुसंख्यक मुसहर अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों में भेजने के लिए अभिशप्त हैं। यहां यह देखना उचित होगा कि ये बच्चे जिन स्कूलों के हवाले किए जा रहे हैं, वहां से इनका किस तरह के मनुष्य के रूप में निर्माण संभव है। अध्ययन के क्रम में मुझे तीन तरह के स्कूलों को देखने का अवसर मिला। इन तीनों की एक-एक झलक देखने से यह पता चलेगा कि ये बच्चे क्या पढ़ रहे हैं:

आनंददायी शिक्षा निकेतन, सलेमपुर टोला, बहोरा बिगहा, गया – नर्सरी कक्षा में कुल बारह बच्चे – नौ लड़के, तीन लड़कियां। सभी मुसहर। बच्चे तीन का पहाड़ा पढ़ रहे हैं। अंक रोमन में लिखे हुए हैं। दीवारों पर अंग्रेजी वर्णमाला का चार्ट टंगा हुआ है। दूसरी तरफ इन बच्चों के द्वारा बनाए हुए कुछ चित्र भी टंगे हुए हैं। कक्षा तीन के बच्चे भाग देने की कला सीख रहे हैं – शिक्षक पिताजी द्वारा लाए दस आम को पांच भाई-बहनों में बराबर-बराबर बांटकर खाने की सलाह देते हैं। बच्चे हिसाब लगाते हैं और भाग देने की विधि सीखते हैं। पांचवीं और सातवीं कक्षा के बीच अंग्रेजी शब्दों पर आधारित क्विज का संचालन शिक्षक द्वारा किया जा रहा था। उन अंग्रेजी शब्दों पर विशेष जोर था जो रोजमर्रा की जिंदगी में काम आते हैं। इस स्कूल में पढ़ने के लिए बच्चों को बीस से पचीस रुपए मासिक शुल्क देने पड़ते हैं। पढ़ने वालों में अधिकांश मुसहर बच्चे हैं जो पास की बस्ती से आते हैं। स्कूल के पास पांच पक्के कमरे और पढ़ाने वाले पांच शिक्षक नियमित उपलब्ध हैं।

गया और बोधगया में रहने वाले मुसहर हों या पटना के समीप दीघा में रहने वाले या पूर्वी चम्पारण के पहाड़पुर प्रखण्ड के रहने वाले– वे अपने बच्चों को पढ़ाना चाहते हैं।

दूसरा स्कूल बोधगया स्थित द्वारको सुन्दराणी द्वारा संचालित 'समन्वय आश्रम' है। इस आश्रम में मुसहर बच्चों के पढ़ने की आवासीय व्यवस्था है। बच्चे पढ़ाई के साथ-साथ कृषि कार्य भी सीखते हैं। कृषि कार्य में भी कुछ सीखने का अवसर इन्हें मिलता है – ऐसी यहां की पाठ्यचर्या है। बड़े से हॉल में बच्चे-बच्चियों का तीन समूह अध्ययनरत है। कुछ पाठ जो यहां तैयार किए गए हैं, उनके द्वारा शिक्षक पढ़ा रहे हैं। कोई छपी हुई पुस्तक इनके पास नहीं है।

तीसरा स्कूल पटना जिला स्थित एक मुसहर प्राथमिक स्कूल है जो विशेष तौर पर मुसहर बच्चों को शिक्षित करने के लिए बनाया गया है। लगभग बीस बच्चे-बच्चियां एक कमरे में एक शिक्षिका के साथ। पहली से पांचवीं कक्षा का समवेत समूह। सब के सब अपनी दुनिया में मस्त। शिक्षिका कक्षा में शान्ति बरकरार रखने को बेकरार। ऐसे में पठन-पाठन की भला क्या उम्मीद की जाए। बच्चे क्या सीख-पढ़ रहे हैं – इसकी सूचना नहीं मिल पाती।

इन तीन प्रकार के अलग-अलग स्कूलों में एक समानता तो यह है कि यहां पढ़ने वालों में बहुसंख्यक मुसहर बच्चे हैं। दूसरी समानता यह है कि इनकी पाठ्यचर्या में मुसहर समाज को कोई स्थान प्राप्त नहीं है। तीस वर्षों से मुसहर बच्चों की शिक्षा में लगे द्वारको सुन्दराणी तो स्पष्ट मानते हैं कि मुसहर समाज इतना शोषित रहा

है कि उनके पास ऐसा कुछ भी नहीं रहा है, जो अगली पीढ़ी तक पहुंचाने लायक हो। यानि, इनके अनुसार, मुसहर समाज के बारे में बच्चों को कुछ बताने की आवश्यकता महसूस नहीं होती है। इसके विपरीत, मुसहर बच्चों के लिए लगभग बीस शिक्षण केन्द्र चलाने वाले उपेन्द्र प्रसाद का यह मानना है कि मुसहर समाज के पास उनकी अपनी एक जीवन शैली, अपनी लोक-संस्कृति रही है। उसकी अच्छाइयों से आने वाली पीढ़ी को निश्चित ही परिचित करना चाहिए। इन अच्छाइयों को वर्तमान स्कूली पाठ्यचर्या के माध्यम से कैसे पढ़ाया जाए – यह तथ्य उपेन्द्र प्रसाद के लिए एक उलझा हुआ मामला है, जिसकी सही दिशा तलाशने की कोशिश में ये हैं। सरकार द्वारा संचालित मुसहर स्कूल की शिक्षिका के पास एक सरकारी पाठ्यचर्या है, जिसे 'तू पढ़, तू सुन' पद्धति से साल के 60-65 दिनों में पढ़ा देना है और ऊपर रिपोर्ट प्रेषित कर देनी है कि पाठ्यचर्या पूरी करा दी गई है।

मुसहर बच्चों के हिस्से जो सरकारी स्कूल आए हैं, वे प्रभावशाली जातियों के संभ्रांत लोगों के बच्चों के इन स्कूलों को छोड़कर चले जाने से खाली पड़े हैं। संभव है, यदि अब भी यहां उनका वर्चस्व होता तो मुसहर बच्चों को कदापि प्रवेश नहीं मिलता। मुसहर समाज में स्नातकोत्तर तक की पढ़ाई करने वाले अशर्फी सदा जैसे लोगों ने आज से बीस-पच्चीस वर्ष पहले इन सरकारी स्कूलों में पढ़ते हुए पीड़ा और उपेक्षा के जो दंश झेले हैं, उसमें कमी जरूर आई है। प्रभुत्वशाली जातियों के बच्चे अब सस्ते-महंगे पब्लिक स्कूलों में पढ़ते है। सरकारी स्कूलों से इन लोगों का मोह भले ही भंग हो गया हो, सरकारी शिक्षा तंत्र का चरित्र आज भी सवर्णवादी है। इसके पात्र दलित, उत्पीड़ित भले ही हो गए हों, लेकिन पाठ्य सामग्रियों का चरित्र अभी नहीं बदला है। एक राज के रखवाले को पाठ्य पुस्तकों में स्थान भले ही मिल जाए, बाइस वर्षों तक लगातार छेनी-हथौड़ी की मदद से लंबे-चौड़े पहाड़ की छाती काटकर आबादी के सभी लोगों को रास्ता मुहैया कराने वाले मुसहर समाज के नायक दशरथ मांझी का कहीं कोई वर्णन नहीं मिलता और न ही फिलहाल जो मानसिकता है, उसमें स्थान मिलने की संभावना है।

प्रश्न उठता है कि क्या दशरथ मांझी का कार्य एक आदर्श प्रस्तुत नहीं करता है? क्या मुसहर समाज को इससे नैतिक बल की प्राप्ति नहीं होती? दशरथ मांझी के कार्य को इसलिए रेखांकित नहीं किया जाएगा, क्योंकि वे मुसहर होने के साथ-साथ अनपढ़, गंवार, निरक्षर हैं। किसी मुसहर द्वारा सूअर पालना उसके विकास में सबसे बड़ा बाधक होता है, लेकिन बी.ए. पास एक पंडित जी जब बैंक से ऋण लेकर पिगरी फार्म की स्थापना करते हैं तो वह व्यवसाय माना जाता है, जिसे एक शिक्षित बेरोजगार ने शुरू किया है। यही वह दृष्टि है जिससे लगातार मुसहर समाज को देखा गया है।

परिणाम यह निकलता है कि आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था में दीक्षित एक मुसहर बच्चा अपने समाज को हिकारत की दृष्टि से देखता है। उसे लगता है कि उसके आसपास जो भी है, सब-का-सब नाजायज और गलत है। ऐसी शिक्षित दृष्टि के साथ मुसहर समाज में लौटने वाला युवक सामंजस्य के स्थान पर टकराव को जन्म देता है। शिक्षा विरोध के साथ-साथ सामंजस्य का पाठ भी पढ़ाती है, तभी किसी समाज का विकास संभव है।

स्कूल से लौटा हुआ एक बच्चा अपने पिता से झगड़ा करता है कि वह दारू न पीये। नशाबन्दी का पाठ उसने अभी-अभी पढ़ा है। पिता की दलील है कि हाड़तोड़ मेहनत के बाद पोर-पोर में उठने वाली दर्द से निजात पाने के लिए उसका दारू पीना अनिवार्य है। बच्चे को अपने पिता की यह दलील अपील नहीं करती; क्योंकि वह सिर्फ नशाबन्दी जानता है, नशाखोरी के कारणों से वह वाकिफ नहीं है। वह नहीं जानता कि कैसे उसके पूर्वजों को जमींदारों ने बंधुआ बनाए रखने के लिए दारू की लत लगाई। वर्तमान शिक्षा-शास्त्र के पास वह दृष्टि नहीं है जिसमें मुसहरों के दारू के चंगुल में फंसने-फंसाने की विशद् विवेचना हो। संभव है यदि यह विवेचना एक मुसहर बच्चे को उपलब्ध हो, तो पहले वह उन कारणों से मुक्त होना चाहेगा। वह उस ओझा और पंडित की भूमिका भी रेखांकित करना जानेगा जो कुलदेवी की प्रसन्नता सूअर के मांस और दारू के चढ़ावे में निहित बताते हैं।

शिक्षा यदि अपने समाज की समीक्षा युक्त व्यवस्था की अंतर्दृष्टि देती तब एक शिक्षित मुसहर अपनी वर्तमान दशा-दिशा की निष्पक्ष और सकारात्मक विवेचना कर सकता है। मुसहर समाज को एक ऐसी ही शिक्षा-व्यवस्था की आवश्यकता है जो उसे अपने-आपको समझने की अंतर्दृष्टि प्रदान करे। वे यह जान सकें कि पीढी-दर-पीढ़ी मौखिक परम्परा से उन्हें जो ज्ञान प्राप्त हुआ है कि 'एक मुसहर यदि काम नहीं करेगा, तो जिन्दा नहीं रहेगा', इसकी विशद् विवेचना ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में करनी चाहिए, तभी मुसहर समाज को थोड़ा बहुत समझा जा सकता है। मुसहरों का एक बड़ा वर्ग 'मसि कागद छुऔं नहीं –

चूंकि मुसहर समुदाय के लोग ग्रामीणों के लिए आहर, बांध, सड़क बनाने में निःस्वार्थ भाव से श्रमदान करते हैं, इसलिए ग्रामीण लोग इन बच्चियों की शिक्षा के लिए अन्नदान और आर्थिक सहयोग करते हैं।

लेखनी गह्यो नहीं हाथ' की घोषणा करने वाले महात्मा कबीर का अनुयायी है। वह निरक्षर भले ही कहलाए, बातचीत में वह कबीर की साखियों का सटीक उपयोग करते हैं।

आखिर ऐसे समाज में शिक्षा की संरचना कैसी हो? जो शिक्षा वर्तमान में चल रही है, क्या उससे कुछ उम्मीद की जा सकती है? अथवा, किसी ऐसे शैक्षिक संरचना की आवश्यकता है जो मुसहर समाज के मौन को मुखर कर सके। उन्हें अपने-आपको, अपने अतीत और वर्तमान को, अपने समाज को ठीक-ठीक समझने की अंतर्दृष्टि दे सके। कुछ शिक्षित मुसहर युवाओं से बातचीत के बाद यह निष्कर्ष निकला कि वे अपने अब तक के अवरुद्ध विकास के लिए प्रभावशाली जातियों को दोषी मानते हैं और उन्हें उनके पूर्वजों के लिए किए की सजा देना चाहते हैं।

ऐसी शिक्षायी दृष्टि उसे मिलनी चाहिए जिसमें एक मुसहर यह निर्धारित कर सके कि उसके विकास के मायने क्या हैं? उसके समाज में विकास के बाधक कौन-कौन से आंतरिक कारण हैं? वह यह जान सके कि स्वविकास, समाज-विकास में ही अन्तर्निहित है, अतः स्वविनाश भी समाज-विनाश का कारण हो सकता है। मुसहरों के वर्तमान समाज के प्रति एक सकारात्मक दृष्टि रखकर ही किसी शैक्षिक संरचना का स्वरूप गढ़ना चाहिए। इस संरचना में वर्तमान व्यवस्था के कुछ तत्त्वों से मुक्ति पाने की जरूरत होगी।

11-12 साल की दो छोटी बच्चियां रोते-रोते उपेन्द्र प्रसाद से यह शिकायत करती हैं कि उन दोनों की शादी उनके मां-बाप ने जबर्दस्ती कर दी, जबकि अभी वे पढ़ना चाहती हैं। शिक्षित समुदाय की नजर में उन बच्चियों के अभिभावक द्वारा किया गया यह कार्य कुकृत्य और अनैतिक की श्रेणी में आता है, जबकि मुसहर समाज में यह आम चलन है। ऐसे संभ्रांत समाज के लोग, जो अपनी 10-12 वर्ष के बच्चे-बच्चियों को घर का एक अलग कमरा उपलब्ध करा सकते हैं, वे यह नहीं समझ सकते कि 10 फुट x 10 फुट के एक झोपड़ेनुमा कमरे में पूरे परिवार के साथ रहने वाला एक मुसहर अपनी बेटी को दूसरा कमरा उपलब्ध नहीं करा सकता, उसे ब्याह जरूर सकता है। अतः 'बाल-विवाह' के विरोध में जाने के पहले इस समाज की उन घटनाओं- परिघटनाओं का अध्ययन करना चाहिए जो बाल-विवाह के लिए उत्प्रेरक का काम करती हैं।

एक और प्रयोग द्रष्टव्य है

बांके बाजार में एक आवासीय बालिका विद्यालय है। इसमें हरिजन समुदाय की बालिकाएं पढ़ती हैं। इसमें अस्सी प्रतिशत बालिकाएं मुसहर समुदाय की हैं। इसमें इन बालिकाओं के रहने-खाने की व्यवस्था है। इस विद्यालय में जयंतियां मनाई जाती हैं। इन अवसरों पर छुट्टियां नहीं होतीं। धनकटनी और धनरोपनी के अवसर पर दो-तीन महीने की छुट्टियां होती हैं। बच्चियों को व्यावहारिक शिक्षा दी जाती है। इन्हें धान रोपने, गाय दुहने, पेड़-पौधा लगाने, राखी तैयार करने, रसोई बनाने इत्यादि का प्रशिक्षण दिया जाता है।

यह विद्यालय मुख्यतः स्थानीय जनता द्वारा उपलब्ध कराए गए संसाधनों के बल पर चल रहा है। चूंकि मुसहर समुदाय के लोग ग्रामीणों के लिए आहर, बांध, सड़क बनाने में निःस्वार्थ भाव से श्रमदान करते हैं, इसलिए ग्रामीण लोग इन बच्चियों की शिक्षा के लिए अन्न-दान और आर्थिक सहयोग करते हैं।

इन कामों को व्यवस्थित रूप देने में उत्प्रेरक की भूमिका निभाते हैं भलुहार गांव के सुरेंद्र पाठक। वे कहते हैं – "मैं तो लोगों से सिर्फ कहता हूं, करते तो वे ही है। मैं उन्हें बताता हूं कि अपना काम आप करना है। सरकार या किसी का इंतजार अपनी तरक्की रोकना है।"

मुसहर समाज के लिए एक ऐसी शैक्षिक संरचना अनिवार्य है जिसमें इनके अनुभव, इनकी लोक-संस्कृति, अनौपचारिक शिक्षण की इनकी पारम्परिक मौखिक व्यवस्था, इनके संघर्ष की दशा, इनके शोषण की वास्तविक तस्वीर, इनके शबरी के साथ संबंध जोड़ने की आवश्यकता, इनके सामाजिक नायकों के कार्यों की प्रक्रिया और परिणाम, समाज के प्रति इनमें दृष्टिकोण इत्यादि का प्रतिबिम्बन हो। आज एक तरफ कम्प्यूटर की ओर बढ़ते हाथ हैं तो दूसरी तरफ भूमिहीन मुसहरों के रोजी की तलाश में पंजाब के खेतों की ओर बढ़ते कदम। इन्हें ऐसी शिक्षा की खोज है जो इन्हें नौकरी तो दिलाए ही मान-सम्मान से जीने का अवसर भी उपलब्ध कराए।

कुछ और बातें

यह सुखद है कि सरकारी स्तर पर भी यह चिंता जाहिर की गई है कि स्कूलों में मुसहर के बच्चे सहज महसूस करें। इसके लिए संस्कृति पर बल दिया गया। इस योजना का नाम उन्होंने सोशल एसेसमेंट स्टडी (बिहार, 1998) रखा। इसका लक्ष्य था : संस्कृति को पाठ्य-पुस्तकों और पाठ्यक्रम में शामिल कराना। साथ में, शिक्षकों को भी शिक्षित करना जिसे यहां शिक्षकों में संवेदनशीलता पैदा करने के लिए ट्रेनिंग कहा गया।

सवाल है कि यह सुंदर योजना किस रास्ते से आगे बढ़ी। असल में यहां भी एक बना-बनाया रास्ता चुना गया। यह रास्ता था मुसहरों के गीतों, प्रतीकों, नायकों, चित्रों और परंपराओं से संबंधित सामग्री इकट्ठा करना। यह रास्ता कुछ-कुछ वैसा ही था जैसा अंग्रेजी राज के जमाने में डिस्ट्रिक्ट गजेटियर लिखने के लिए जिला के कलेक्टर अपनाते थे। यह योजना इस बात को समझने और स्वीकार करने को तैयार नहीं थी कि संस्कृति महज इकट्ठा करने की चीज नहीं है। दूसरे समाजों की संस्कृतियों की तरह मुसहर समाज की भी संस्कृति एक जीती-जागती प्रक्रिया है। यह निरंतर बदलती है, पुरानी चीजों को छोड़ती है और नई चीजों को समेटती है। रूपक की भाषा में, यह उस पेड़ के समान है जो हर साल पुराने पत्तों को छोड़ता है और नए पत्तों को ग्रहण करता है।

जीवन और प्रकृति की यह प्रक्रिया ऐसी अनोखी चीज नहीं है जिसे महज इकट्ठा करने की वस्तु मान लिया जाए और कभी-कभार जहां-तहां प्रतीकात्मक उपस्थिति का कार्यक्रम बना दिया जाए। इस योजना का फल क्या निकला। इसकी एक प्रतिच्छाया बिहार के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री लालू प्रसाद की एक घोषणा में दिखती है। उन्होंने कहा कि जो मुसहर माता-पिता अपने बच्चे को स्कूल नहीं भेजेंगे उन्हें जेल की सजा दी जाएगी और जो नियमित रूप से इन्हें स्कूल भेजेंगे उनके बच्चों को प्रतिदिन एक रुपया दिया जाएगा।

अब इस पर कहने को शेष क्या रह जाता है! हाल में लंदन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर ब्रायन वी. स्ट्रीट ने साक्षरता एवं संस्कृति के अंतर्संबंध की गंभीर व्याख्या में बताया है कि अलग-अलग समुदाय साक्षरता से अलग-अलग तरह से जुड़ पाता है। उनके शोध में यह पक्ष दिलचस्प ढंग से उभरता है कि सरकार और समाज दबे हुए समुदाय को भले ही अनपढ़ और निरक्षर की श्रेणी में रखें पर यह समुदाय अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए साक्षरता का इस्तेमाल कर लेता है।

और अब साक्षरता के कुछ आंकड़े। आप साक्षरता के फीते से इस समुदाय को नापें। यह फीता लगातार बढ़ते गैप को दर्शाता है। 1981 की जनगणना बताती है कि मुसहर समुदाय की औसत साक्षरता दर 2.20 फीसदी थी जिसमें 4.01 फीसदी मर्द और 0.32 फीसदी औरतें साक्षर थे। भारत में औसत साक्षरता दर (1991 में) 52 फीसदी थी। इसमें 64.13 फीसदी पुरुष और 39.29 फीसदी औरतें साक्षर थे। इस जनगणना में दलितों की औसत साक्षरता 37.41 फीसदी थी जिसमें 49.91 फीसदी पुरुष और 23.76 फीसदी औरतें साक्षर थे।

अब हम स्थान बदल देते हैं। अब हम खड़े हैं बिहार की साक्षरता की जमीन पर। 1991 में बिहार में औसत साक्षरता दर 38.48 फीसदी थी जिसमें 52.49 फीसदी पुरुष और 22.89 फीसदी औरतें साक्षर थे। इस जनगणना में दलितों की साक्षरता दर 19.49 फीसदी थी जिसमें 30.64 फीसदी पुरुष और 7.07 फीसदी औरतें साक्षर थे।

आप यह भी जानना चाहेंगे कि मुसहरों की जिन थोड़ी-सी आबादी ने स्कूल का मुंह देखा वे आगे शिक्षा के किस पायदान पर थे। 1991 की जनगणना के मुताबिक इस समुदाय में 1974 में पुरुषों ने मैट्रिक का सर्टिफिकेट प्राप्त किया था जबकि सर्टिफिकेट पाने का यह सौभाग्य मात्र 25 औरतों को मिला। 49 मर्दों ने स्नातक या स्नातकोत्तर उपाधि हासिल की, जबकि मात्र एक औरत इस श्रेणी में शामिल हो पाई। तकनीकी शिक्षा के मामले में तो साक्षरता का फीता एकदम अप्रासंगिक हो जाता है। बिहार की सात करोड़ की कुल आबादी (1991) में एक भी मुसहर न तो डॉक्टर था, और न ही कृषि वैज्ञानिक।

यह आंकड़े महज तथ्य नहीं हैं। इनसे यह यक्ष प्रश्न खड़ा होता है कि ये हाल-बेहाल क्यों हैं। ❑

साक्षरता नहीं, उत्कृष्टता

नीता कुमार

यह लेख बाईस साल पहले शुरू हुए ऐसे स्कूल के बारे में है, जिसका मकसद हर बच्चे को, चाहे उसकी पृष्ठभूमि जो भी हो, समावेशी तरीके से उत्कृष्ट शिक्षा मुहैया कराना है। यह एक शोध पर आधारित है, जिसने भारतीय शिक्षा की दो महत्वपूर्ण समस्याओं को खोज निकालाः पहला, वर्गों और समुदायों के बीच खाई को पाटने में राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी;[1] और दूसरा, एक कमजोर तकनीकी आधार, जिससे जगह, पाठ्यक्रम, स्कूली आचरण और शैक्षणिक रणनीतियों में कमी साफ झलकती थी और जो उत्कृष्ट शिक्षा के लिहाज से अपर्याप्त थीं। विद्याश्रम नाम के जिस स्कूल की चर्चा हम यहां कर रहे हैं, उसके पास इन दोनों ही समस्याओं के निदान का एक महत्वाकांक्षी उद्देश्य है।[2] इन प्रथाओं की कामयाबी और नाकामियों का संक्षिप्त ब्योरा हमें समावेशीकरण के सामने आने वाली अहम चुनौतियों से परिचित कराएगा।

विद्याश्रम की कक्षाओं में शहर और आसपास के गांवों के सबसे गरीब और हाशिए पर पड़े लोगों को शामिल किया जाता है। हमारा उद्देश्य एक उत्कृष्ट स्कूल स्थापित करना है, न कि 'गरीबों' और 'वंचितों के लिए' महज एक स्कूल बना देना।

हमारी समझ में कक्षा एक छोटी दुनिया ही होती है और यह समानता लाने की सबसे अहम जगह भी। इतनी बड़ी दुनिया में पूरी आबादी दो हिस्सों में बंटी हैः एक, जिसमें कुछ के पास आर्थिक पूंजी है और कुछ के पास नहीं; दूसरे, जिनके पास अंग्रेजी जानने वाले और 'अच्छी शिक्षा' पाए माता-पिता हैं और नहीं हैं। विद्याश्रम की कक्षाओं में हम शाश्वत किस्म के अंतर को मिटाने के उद्देश्य के साथ काम कर रहे हैं। शिक्षकों के पास रणनीतियों की एक सूची है, जिसके जरिए वह विरोधाभासी रूप से बंटी बाहरी दुनिया की ताकत को खत्म करने के लिए एक वैकल्पिक दुनिया रचते हैं। इस वैकल्पिक दुनिया में बच्चे एक साथ विविध चीजों के अनुभव हासिल कर सकते हैं। इस अनुभव को परंपरा की ताकत और आदतों के रूप में अपनाकर वे उन्हें सामान्य रूप में लेना सीखते हैं। बच्चे कई तरीके से एक-दूसरे से अलग होते हैं और वे विभाजन के वैविध्य और कल्पनाशीलता पर अपनी प्रतिक्रिया देते हैं। वे हैव्स और हैवनॉट्स के विचार को लेकर अड़ियल नहीं होते और उन्हें वाकई पाए जाने वाले कुछ दिलचस्प वर्गों की बनस्बित आर्थिक और सामाजिक पूंजी को महत्वहीन मानकर हाशिए पर डालने पर कोई उज्र नहीं होता।[4]

बच्चे कई तरीके से एक-दूसरे से अलग होते हैं और वे विभाजन के वैविध्य और कल्पनाशीलता पर अपनी प्रतिक्रिया देते हैं। वे हैव्स और हैवनॉट्स के विचार को लेकर अड़ियल नहीं होते।

ऊपर जिस कक्षा का उल्लेख किया गया है वैसी समावेशी कक्षा अपना शैक्षिक काम अंशतः बाल-केन्द्रित वातावरण और मुक्त रचनात्मकता को बढ़ावा देने वाला वातावरण को रोजमर्रा के रूप में अपनाकर करती है। मैं चार उदाहरण देती हूं। पहला, सबसे आसान रणनीति है अधिनायकवादी तरीके से शिक्षक की तरफ मुंह करके कतार में कुर्सियां लगाकर बैठने की बजाय सीटों के छोटे समूह बनाकर बैठाना, जिसमें छात्रों का मुंह एक-दूसरे की ओर हो। जरूरत पड़ने पर बच्चे शिक्षक की तरफ घूम जाते हैं और अपने

काम के लिए फिर से पीछे की ओर मुड़ जाते हैं। हर कक्षा में हमने फर्श पर बैठने की व्यवस्था भी की है। मानव शरीर को पहुंचने वाले फायदों के अलावा इससे हर बच्चा शारीरिक और मानसिक रूप से प्रसन्न रहता है, क्योंकि उन्हें घर जैसा माहौल महसूस होता है। बच्चे डेस्क पर बैठे हों या फर्श पर, दोनों ही स्थितियों में खास महसूस करते हैं।

दूसरा उदाहरण समय से जुड़ा है। स्कूलों में जिस तरह की प्रक्रिया अपनाई गई है, जैसे ही घंटी बजती है, बैगों में हलचल शुरू हो जाती है, किताबें-कॉपियां बाहर निकाली और अंदर रखी जाने लगती हैं। शिक्षकों का आना-जाना लगा रहता है। यह प्रक्रिया बच्चे के लिए असहज होती है। विद्याश्रम में हमने समय की कमी के मुद्दे पर जीत हासिल की है और इसके लिए दिन-भर में किसी घंटी का प्रावधान नहीं रखा। काम की हर इकाई या अध्ययन का विषय एक या दो घंटे तक चलता है। बच्चों को अब भी काम पूरा करने और समय का सम्मान करने का प्रशिक्षण मिल रहा होता है, लेकिन इसमें वह सिर्फ वक्त का मूल्य समझते हुए ऐसा करते हैं, न कि किसी समय-तालिका की गुलामी में।

एक तीसरा, हमारे स्कूल में महत्वपूर्ण प्रक्रिया काम करने की गांधीवादी सिद्धांत से मिलती-जुलती है, जिसमें हर कोई अपने हाथ से काम करता है और अपनी साफ-सफाई भी खुद रखता है।[5] बच्चे अपनी कक्षा को साफ करने के लिए रोज खुद की झाड़ू; और पोंछे का इस्तेमाल करते हैं। इसके पीछे एक ही विचार है कि हर किसी का अपनी जगह पर नियंत्रण होना चाहिए, और इसके पीछे वह नैतिक विचार नहीं है कि अपने हाथ से काम करना बहुत बड़ा पुण्य है। उत्तर भारत की धूल, कुत्तों और यहां तक कि बंदरों का घुस आना, कीड़े, चींटियां, तिलचट्टे या चूहे; हवाएं, पत्तियां और पानी, सफाईकर्मी या कामवाली की गैर-मौजूदगी – ये सारे कारण हो सकते हैं जिसकी वजह से किसी के आसपास का वातावरण आमतौर पर गंदा हो जाता है। जब क्लास के पास अपनी जगह का नियंत्रण खुद होता है, तब कोई बहाना नहीं चलता। बच्चों में यह विश्वास जगता है कि यह उनकी जगह है और उनके पास ही इससे व्यवस्थित करने का अधिकार भी है। यह जिम्मेदारी का सवाल नहीं, बल्कि अधिकार की बात है।

चौथी बात, हमने कक्षा पांच तक निजी सामानों पर बंदिशें लगा दी हैं और हमने कक्षा में बांटकर इस्तेमाल करने की प्रवृत्ति बढ़ाई है। यहां चीजें सामुदायिक होती हैं – पेंसिल, कागज, गोंद, कैंची, रंग वगैरह। यहां एक और परंपरा है कि सारे बच्चे सुबह में अपने बैग खाली कर देते हैं, अपनी किताबें और कॉपियां खास दराजों में रखते हैं और वह चीज निकाल लेते हैं जिसकी उन्हें जरूरत है। संपत्ति के इस समुदायीकरण से समानता के दो मकसद पूरे होते हैं, और साथ ही, नर्सरी के बाद उन्हें सक्रिय रूप से सिखाया जाता है कि अपनी जगह का नियंत्रण वे खुद किया करें। उनकी दखल का उसमें स्वागत होता है और इसी से उनकी पहचान बनती है। यह नागरिकता का बहुत बड़ा सबक है कि समानता का सिद्धांत उपदेश देकर नहीं सिखाया जा सकता, बल्कि इसके लिए वे अपनी जगहों में किस तरह पारस्परिक संबंध कायम रखते हैं।

शिक्षकों के साथ बातचीत के दौरान उनकी स्कूली प्रक्रियाओं पर मेरे पास उनके लिए कुछ सवाल थे। मैंने उनसे शहर के बारे में कुछ खास नहीं पूछा, क्योंकि मैंने देखा कि शहर कचरे से भरा था और मुझे लगा कि यहां के लोग भी कचरे को लेकर बेपरवाह थे। बहरहाल, लोग मुझसे बार-बार कहते रहे, ''यहां का माहौल पिछड़ा हुआ है।'' या ''यहां के लोग नीचे वर्ग के हैं।'' जाहिर है, इस वक्ता ने प्रगति के महत्व से बेपरवाह निचले तबके के पिछड़े लोगों को दोष दिया था और उन्होंने खुद एक बढ़िया शिक्षक या सुधारक होने की खामी पर उंगली उठाने की जहमत नहीं उठाई। जब इन पिछड़े और निचले तबके के लोगों से पूछा गया, तो उन्होंने शिक्षकों पर ठीक से नहीं पढ़ाने; बच्चों, कक्षा और स्कूल को ठीक से संभाल नहीं रख पाने का तोहमत मढ़ा।

यही, शिक्षा-केन्द्रित विचार ही मोटे तौर पर विद्याश्रम को लेकर हमारा विचार बना। भारतीयों के लिए कूड़ा कोई सांस्कृतिक प्रश्न ही नहीं है, न ही इस बारे में उनका कोई निजी या सार्वजनिक मूल्य है। यह उनकी कोई ऐतिहासिक समस्या भी नहीं रही है, हालांकि औपनिवेशिक सरकार ने शहरी पड़ोस की स्वशासन की व्यवस्था को कामयाबी के साथ ध्वस्त कर दिया और इस काम को निजी क्षेत्र के हाथों में देकर और बिगाड़ दिया और इसमें जनता ने दूसरे की (राज्य की) जिम्मेदारी मान ली।

कूड़ा शैक्षिक समस्या है। दुनिया में बाकी किसी जगह दीर्घावधि में कचरा-निपटान का काम शिक्षा के जरिए ही होता है। बाकी जगहों पर स्कूल आधुनिकता की स्तरीय एजेंसी के रूप में काम

करते हैं और आधुनिक नागरिकों को वे नियमों का पालन करने की सीख देते हैं और इसमें कचरा-प्रबंधन भी होता है। हम इसे कैसे कर सकते हैं?

विद्याश्रम का दृष्टिकोण हर किसी को विज्ञान, कला और नागरिक शास्त्र के संयोजन से पढ़ाने का है। विज्ञान हमें कीटाणुओं और संक्रमण के बारे में बताता है और सफाई के काम में एक नजरिया प्रदान करता है। कला हमें प्रकृति की पूजा और उसकी रसानुभूति का इतिहास बोध देती है। यह खूबसूरत जगहों और किसी के प्राकृतिक झुकाव पर नियंत्रण का बोध कराती है। लेकिन सबसे अहम है इस काम को रचनात्मक और सहज रूप से करना, न कि नैतिक मानकर करना। नागरिकशास्त्र हमें सिखाता है कि हम खुद को एक राष्ट्र के तौर पर मानें और इस तरह हम अपनी खुद की परिभाषा को आधुनिकता की ओर ले जाएं। यह सिखाना आसान नहीं है, क्योंकि हमारा और उनका, हम शिक्षक और सुधारक और वे लोग, जिन्हें सुधारना है, उनमें पारस्परिक भूमिकाएं उलटने का खतरा लगातार बरकरार रहता है।

सामाजिक रूप से समावेशी कक्षा बनाने के क्रम में परिवार और स्कूल के बीच के अंतर को पाटने का काम पाठ्यक्रम को करना होता है। 19वीं सदी में औपनिवेशिक शासन ने अध्यापन की सीमित तकनीक के जरिए आधुनिक स्कूली व्यवस्था का सूत्रपात किया, जिसे महज कुछ ही स्कूलों द्वारा अपनाया जा सकता था। इससे आबादी के बहुत थोड़े हिस्से तक ही पहुंचा जा सकता था। इसके साथ ही स्कूली व्यवस्था की राजनीति भी अस्तित्व में आई, जिसमें न सिर्फ तकनीक की खामी आती गई, बल्कि इसका मकसद शिक्षा को सिर्फ कुलीन वर्ग तक सीमित रखना भी था। नवशिक्षितों के परिवार को छात्र के पीछे खड़ा होना चाहिए था, खासकर इसमें मां के सहयोग की दरकार थी, या फिर उन्हें ट्यूटरों का खर्च उठाने लायक होना चाहिए था, और अध्ययन में भी विशेषज्ञता की जरूरत थी – रटना – और इस पढ़ाई में भी छात्र के जीवन के एक दशक या अधिक की जरूरत थी।

आज स्कूलों की घरों पर निर्भरता इतनी व्यापक है कि पांच साल के बच्चे के अभिभावकों को भी कथित मॉन्टेसरी स्कूल कहते हैं, ''उसे हिन्दी मात्रा सीखने की जरूरत है। आप उसे हर रोज बिठाएं और पढ़ाएं। उसे हर रोज बैठकर पढ़ने की आदत डलवाने की जरूरत है।''[6] इस स्थिति को उलटने के लिए हमें 'स्कूल के काम' और इसके परिवार के साथ सटीक बातचीत पर स्थिति स्पष्ट करने की जरूरत है। हमारी पहली नीति 'बिना ट्यूशन' और 'ऐसा गृह कार्य जो बच्चा खुद ही कर ले' की है। यह बात शिक्षकों के प्रशिक्षण की जरूरत पर जोर देती है, क्योंकि घर पर काम पूरा करने की आदत पर निर्भरता भारतीय शिक्षा के हर स्तर पर जड़ें जमाए हुई है। इसमें अभिभावकों के साथ कार्यशाला शामिल है, क्योंकि अभिभावक यह मानते हैं कि गृहकार्य न देना या कम गृहकार्य देने का मतलब स्कूल में अनुशासन की कमी है। इसका मतलब यह भी है कि स्कूल के जिम्मे अकादमिक रूप से काफी अधिक तैयारी भी है, ताकि जितने पाठ्यक्रम को कवर करने की जरूरत है उसे कवर किया जाए। शिक्षकों के जिम्मे भी काफी बड़ी जिम्मेदारियां होती हैं कि वे हमारे समावेशी कक्षा में अलग-अलग पृष्ठभूमियों से आए हर बच्चे पर खास ध्यान दें।

भारत जैसे उपनिवेश में स्थानीय सामग्री के इस्तेमाल से वैश्विक माने जाने वाले विषयों के पढ़ाने का विचार एक बड़ी वैचारिक और तकनीकी परियोजना थी। विद्याश्रम में हम सार्वभौमिक ज्ञान उपलब्ध कराने के मामले में क्रांतिकारी कदम रहे हैं और इस मामले में कोई छूट नहीं लेते।[7] हमारा विश्वास है कि सार्वभौमिक ज्ञान को अंशतः वयस्क अवधारणा के तौर पर देखा जाना चाहिए और किसी भी मामले में इन्हें बच्चों की पहुंच से दूर रखा जाना चाहिए और इसे सृजनात्मकता के स्तर पर पूरी तरह से बाहरी माना जाना चाहिए। साथ ही, अवधारणात्मक स्तर पर इन्हीं चीजों को स्थानीय आख्यानों और तस्वीरों के जरिए बच्चों तक पहुंचाया जा सकता है।

हमें कई प्रयोगों से यह भान हुआ कि एक शिक्षक एक पाठ्यक्रम विकासक नहीं है, तब हम अपनी कार्य-पुस्तिका खुद बनाते हैं। यह काम अध्यापन से पूरी तरह अलहदा है। कक्षा पांचवीं तक की हमारी कार्य-पुस्तिका में कई लोगों, जानवरों, प्रतीकों और काल्पनिक चीजों की कहानियां हैं। ये हमारे शहर के समुदायों की ही होती हैं। इनमें से हर कहानी हमारे समाज अध्ययन, इतिहास, भाषा, गणित और विज्ञान के मुख्य मुद्दों पर आधारित होती है। ये दुनिया-भर में प्राथमिक स्कूलों के पाठ्यक्रमों का हिस्सा होती हैं।

अहम बात यह है कि इस दृष्टिकोण को आदर्श न बनाया जाए। यह एक बेहद व्यावहारिक किस्म का दृष्टिकोण है, न कि रूमानी

पढ़ाई में अचानक डुबोने की बजाय संगीत और नृत्य का इस्तेमाल पढ़ने में बढ़त के लिए किया जा रहा है। हर बच्चे को गाना और नृत्य करना सिखाया जाता है। वे विभिन्न भाषाओं में सभी किस्म के गाने सीखते हैं।

किस्म का दृष्टिकोण, जो 'लोगों को दिया जाए'। ना ही यह एक समुदाय आधारित दृष्टिकोण है, जिसमें हम ला डेवी (ड्युई) के सिद्धांतों के मुताबिक मानते हैं कि एक बच्चे को अपने आसपास के संकेन्द्रीय वृत्तों के परिप्रेक्ष्य में विशेषज्ञता हासिल करनी चाहिए। यह वृत्त स्वयं, परिवार, समुदाय, राज्य, राष्ट्र और दुनिया का होता है। इसके उलट, कीरन एगन में हमारा भरोसा है, जिसके तहत माना जाता है कि सूचना में सबसे विलक्षण, जायकेदार और रोमांचक विदेशी चीज, और जो बच्चों के लिए वांछित भी है, वही होती है, जिसमें शक्ति, उलझन, संघर्ष, यात्रा और पुरस्कार की बातें हों।[8] ऐसा ही पाठ्यक्रम वर्गों और समुदायों के बीच समानता लाने के लिए बहुत संभावनाओं वाला है।

पुस्तकालयः उत्कृष्ट और समावेशी अध्यापन के लिए हमारा पूरा भरोसा आख्यानों और तस्वीरों में है। ऐसे में, हम किसी विषय का परिचय पहले तो कहानी की किताबों के जरिए करवाते हैं, जिसमें तस्वीरें भी होती हैं। जब बच्चे अंग्रेजी में पढ़ते हैं, तो वे यह नहीं समझ पाते हैं कि उन्होंने क्या सुना है, लेकिन वे साथ की तस्वीरों से मंत्रमुग्ध हो जाते हैं और फिर बड़े विवेकपूर्ण तरीके से उसमें आई कथा को आत्मसात करते हैं। इस तकनीक से उनके अंग्रेजी शब्द-भंडार में बढ़ोतरी हुई है, उनके ध्यान केन्द्रित करने और किताबों और आख्यानों में उनकी पसंदगी बढ़ी है।

लेकिन किताबें कैसी रखी जाएं? हर बच्चे पर एक पाठ्यपुस्तक कम करके और उस पाठ्यपुस्तक की बजाय एक कहानी की किताब रखकर, हमने तीस बच्चों की एक कक्षा में तीस कहानी की किताबें रख दीं। लेकिन, इसके जरिए हासिल किया गया मूल्य असमानुपाती ढंग से काफी अधिक था। हम वैसे शिक्षक कैसे लाएं, जो यह जानते हों कि बच्चों के लिए कहानियों की किताब कैसे पढ़ी जाए? ऐसे शिक्षक बने-बनाए नहीं पाए जा सकते। हमें शिक्षकों को प्रशिक्षित करना होगा। उन्हें यह तकनीक पता नहीं होगी और वे इसके साथ सहज भी नहीं रहे होंगे। लेकिन यह सिर्फ एक तकनीक है और महज पेशेवराना अंदाज का सवाल ही है और शिक्षकों को ऐसा करना सिखाया जा सकता है।

हमें ऐसे शिक्षकों और अध्यापकों से सहानुभूति है जो एक हद तक संजीदगी से मानते हैं कि भारतीय स्कूलों में पाठ्यक्रम बेहद बड़ा है और इसकी चुनौती इतनी भारी है कि कोर्स के बाहर कुछ पढ़ने की जगह ही नहीं बचती। इस बात के मेल में स्कूलों में पुस्तकालयों की कमी और पढ़ने की संस्कृति के अभाव को देखने से हो जाता है। उपाय सरल है : प्रशासनिक स्तर पर मजबूत इच्छाशक्ति; बालिगों को भी नया कुछ सीखने का प्रशिक्षण देना; और यह बताना कि पढ़ना एक जीवन-मूल्य है और बच्चे बेहतर तभी सीखते हैं जब वे अच्छे पाठक होते हैं।

शरीर का इस्तेमालः पढ़ने के साथ ही आता है प्रदर्शन। इंसानी शरीर ही इस्तेमाल किए जाने लायक सबसे सस्ता उपकरण है। हालांकि, चार्ट और बाकी की सामग्री होना अच्छा होता है, लेकिन यह महंगा भी हो सकता है। इसलिए हम थियेटर, संगीत और नृत्य का इस्तेमाल पढ़ाने के लिए करते हैं और हमें अपने शरीर के अलावा किसी और उपकरण की जरूरत पढ़ाने के लिए नहीं पड़ती।

जब एक शिक्षिका पढ़ाने के लिए रखी जाती हैं, तो उसे आगाह किया जाता है कि उसे अपने काम के लिए कुछ हफ्तों का अनिवार्य प्रशिक्षण लेना होगा। यह प्रशिक्षण उस वक्त होगा, जिसे शिक्षकों के लिए छुट्टी का माना जाता है। तब शिक्षिकाओं को किसी स्वयंसेवी पेशेवर थियेटर कलाकार से थियेटर की विभिन्न तकनीकों का दो से चार हफ्तों का प्रशिक्षण दिलवाया जाता है। इसके साथ-साथ, हम बदलते समाज के बारे में विभिन्न विषयों पर चर्चा करते हैं। मसलन, लिंगगत भूमिकाएं और पारंपरिक और आधुनिक कहे जाने वाले मूल्यों के बीच की स्पर्धा। हमने कला, संगीत, नृत्य और फिल्मों की कार्यशालाएं आयोजित की हैं। थियेटर के इस्तेमाल का एक अन्य बुनियादी लेकिन बेहद उत्पादक हिस्सा रहा थियेटर के खेलों का इस्तेमाल। इसकी तकनीक थी जो भी सिखाया जाना है उसकी एक्टिंग करना।

विद्याश्रम में विभिन्न कक्षाओं के बच्चों से हमेशा उनकी पढ़ी हुई कहानियों के जानवरों या इंसानी किरदारों की भावनाओं और

कार्यकलापों के नाटक करवाए जाते हैं। इसमें संख्याओं, भिन्नों, रसायनों और भौतिक गुणों की कहानियां भी होती हैं। असल में कुछ करते हुए वह चीज अमूर्त रूप से सीखना जो सिर्फ सैद्धांतिक रूप से सामने हो, वह अपरिमेय है।

पढ़ाई में अचानक डुबोने की बजाय संगीत और नृत्य का इस्तेमाल पढ़ने में बढ़त के लिए किया जा रहा है। हर बच्चे को गाना और नृत्य करना सिखाया जाता है। वे विभिन्न भाषाओं में सभी किस्म के गाने सीखते हैं। यहां तक कि अगर वे गाने के बोल नहीं भी समझते हैं, फिर भी वे संगीत की खूबसूरती को समझ जाते हैं। गाने सीखना उन्हें अनुशासन और नियम-कायदों का पालन सिखाता है, जो एक आखिरी उत्पाद के रूप में एक उपलब्धि होती है। हम कोशिश करते हैं कि ऐसे संगीत शिक्षक साथ ला पाएं, जो उन्हें लय और स्वरमान को समझना सिखाएं और साथ ही उनकी रोजमर्रा की जिंदगी में आवाजों को संगीत से जोड़ना सिखा सकें। हम बच्चों के लिए एक ऐसे पाठ्यक्रम की दिशा में काम कर रहे हैं, जिसमें संगीत और नृत्य का इस्तेमाल कई प्रकार से हो।

किताब लिखना और सर्जनात्मक लेखनः कक्षा एक या दो के बाद से हमारे बच्चे कहानियां और किताबें लिखते हैं। हमारा विश्वास है कि सर्जनात्मक लेखन एक कौशल है, जिसे सिखाया जा सकता है। हम इसे अपने शिक्षकों और छात्रों को कार्यशाला के जरिए सिखाते हैं। यह एक कम लागत वाला काम है, लेकिन इसके लिए वक्त की जरूरत होती है। इसके लिए इस दृढ़ विश्वास की जरूरत है कि बच्चों को लिखने का आनंद लेना सिखाया जा सकता है और असल में बच्चे लिखने का आनंद लेते भी हैं। इस मामले में हम आज तक गलत साबित नहीं हुए हैं। हमारे पास एक ऐसा स्कूल है जिसके बच्चे पत्रिकाएं, सर्जनात्मक कहानियां और किताबें लिखते हैं।

तकरीबन हर स्कूल में रिवाजों की शक्ति को कम करके आंका जाता है और वे बिलकुल पारंपरिक रिवाजों का ही इस्तेमाल करते हैं – पोशाक, आते-जाते वक्त के अभिवादन, प्रार्थनाएं और सबसे ज्यादा विस्तृत रूप से यह परंपरा स्कूलों की पत्रिकाओं और सालाना उत्सवों में दिखती है। शिक्षकों को यह बात समझ लेनी चाहिए और इसमें पारंगत होना चाहिए कि किसी खास मकसद के लिए रिवाज किस तरह कामयाबी से या नाकामी से बनाए जा सकते हैं।[9] विद्याश्रम में हमारा उद्देश्य है :

1. एक ऐसा एकीकृत स्कूल बनाना जहां अपनी पृष्ठभूमियों से इतर बच्चे बस बच्चे ही रहें। ऐसे में हमने ऐसे रिवाज बनाए हैं जिसका मकसद एकता बढ़ाना है, मसलन बैठने की व्यवस्था और चीजों का बंटवारा।

2. ऐसे छात्र तैयार करना जो पर्यावरण को लेकर इतने संवदेशील हों कि विकास से जुड़ा हर मसला उनके लिए पर्यावरण का अवयव लिए रहे, ताकि वे सही वक्त पर कचरे और पर्यावरणीय बर्बादी को सहन न करना सीख सकें। इसलिए हमने कक्षा और परिसर में साझा चीजों और जगहों की देखभाल और सफाई के काम को परंपरा में ढाल दिया है। इसके बाद हमने विभिन्न परियोजनाओं के साथ प्रयोग किए। मिसाल के तौर पर, स्कूल के भवन खंडों के नाम फंतासी वाली दुनिया के नाम पर रखना (ओज, नेवरलैंड, नार्निया और वंडरलैंड) और ये पर्यावरणीय परियोजना के प्रति कटिबद्ध हैं।

3. सीखने से प्यार करने वाले छात्र तैयार करना, जो सीखने को जादू और मजेदार समझें, उनके लिए सीखने की ऐसी नींव तैयार करना कि वे अपनी पूरी उम्र वह सीखना जारी रखें। इसके लिए हमने बहुत सारी ऐसी परंपराएं त्याग दीं, जो भारतीय स्कूलों में पाई जाती हैं। मिसाल के लिए, क्लास में बोलने के लिए खड़ा होना, किसी चीज की अनुमति के लिए जोर से पूछना और कक्षा में हमेशा खामोश रहना। बजाय इसके हमने कायदे बनाए हैं जिसके तहत बच्चे सहज और बराबरी का महसूस करें और जो भी काम करें उसमें उन्हें मजा आए।

4. कुछ भारतीय परंपराओं का सायास सम्मान करना। उदाहरण के लिए, अपने से बड़ों और मेहमानों का सम्मान करना। इन सब परंपराओं को अपनी जरूरतों के हिसाब से करीने से जोड़ा जाना चाहिए। जैसे – नियमों का सम्मान करने की शिक्षा देना और यह व्यक्ति की प्रतिष्ठा से परे सबके लिए समान रूप से लागू हो।

सभी चुनी गई परंपराओं के मूलमंत्र पर गहराई से विचार करने की जरूरत है। परंपराएं गुप्त पाठ्यक्रम होती हैं और जो भी कुछ प्रत्यक्ष तौर पर नहीं पढ़ाया जाता, वह सब अपनाई गई परंपराओं के जरिए प्रत्यक्ष तौर पर पढ़ाया जा सकता है।

किसी शैक्षिक तंत्र की कामयाबी हो या नाकामी, इसके केन्द्र में शिक्षक ही होते हैं और इसलिए उन्हें भारतीय शिक्षा की असफलता के लिए दोषी ठहराया जाता है। हमें गतिरोध के बीच अपना रास्ता खोजना होगा कि हमें परिवर्तन लाने के वास्ते शिक्षकों की जरूरत है और शिक्षक स्वयं इस समस्या की जड़ में हैं। हमने शिक्षकों के साथ धैर्यपूर्वक काम करने की रणनीति अपनाई है। हमारी कोशिश है कि हम कम से कम तीन तरीकों से उनकी मदद करें ताकि वे पुनरोत्पादन के उस चक्र से निकल पाएं, जो किसी तंत्र के सबसे बुनियादी और बदतर कारकों का उत्पादन करते हैं। अपने वक्त में इन्हीं कारकों ने उनका (शिक्षकों का) निर्माण किया था।

पहला तरीका बौद्धिक है। शिक्षक एक पाठ्यक्रम का अध्ययन करते हैं, जिसके जरिए उन्हें अपने बारे में, उनकी दुनिया और उनके इतिहास के बारे में अलग तरीके से सोचने के बारे में सिखाया जाता है। ऐसे में, हमारी जरूरत है कि वे जन्म से मिले कुछ वर्गों (जाति, वर्ग, लिंग) और सांस्कृतिक वर्गों के बारे में निष्क्रियता से अनदेखी करने की बजाय, इन विषयों पर सबसे बेहतरीन लेखनों में से चयनित और अनुवादित सामग्री पढ़ें, सोचें और इन विचारों के बारे में पाठ्यक्रम पर विमर्श करें। साथ ही साथ, वे मशीनी तरीके से रटने की उस दुनिया से भी बाहर निकल जाते हैं, जिससे वे जीवन-भर जुड़े रहें। अब वे अपने बौद्धिक पाठ परस्पर संवादात्मक व्यवस्था में हासिल करते हैं, जहां वे खुद पढ़ सकते हैं, शोध और प्रतिक्रिया कर सकते हैं, विमर्श और उसमें हिस्सा ले सकते हैं।[10]

शिक्षकों में बदलाव लाने का दूसरा तरीका सांस्थानिक है। हमें एक ऐसे कार्य वातावरण बनाने की जरूरत है, जिसमें शिक्षक जागरूक हों और अपने पेशेवराना रवैए पर फोकस कर सकें। मोटे तौर पर यह उचित जगहें और व्यवस्था बनाने की प्रक्रिया है। हमारा विश्वास है कि लोग व्यवस्था के मुताबिक ढल जाते हैं और उन्हें विकसित करना उनकी जिम्मेदारी नहीं होती, बल्कि वे सुविधा का फायदा उठाना चाहते हैं और वे एक सापेक्षिक वातावरण में मिलने वाली प्रतिष्ठा का फायदा भी उठाना चाहते हैं।

शिक्षकों में बदलाव लाने का दूसरा तरीका सांस्थानिक है। हमें एक ऐसे कार्य वातावरण बनाने की जरूरत है, जिनमें शिक्षक जागरूक हों और अपने पेशेवराना रवैए पर फोकस कर सकें। मोटे तौर पर यह उचित जगहें और व्यवस्था बनाने की प्रक्रिया है।

शिक्षकों की मदद करने का तीसरा तरीका है कि उनकी कक्षा में उन्हें उत्कृष्टता और समावेशी वातावरण बनाने का अगुआ बनाया जाए। इसके लिए कला, और खासकर थियेटर, का इस्तेमाल किया जाए। हमारा विश्वास है कि पहले निर्देशित होकर, फिर मुक्त होकर और अपने शरीर का इस्तेमाल करते हुए पुनरोत्पादन के चक्र को तोड़कर ही नए तरीके से यह किया जा सकता है। शिक्षक अवधारणाओं और मूल्यों को युक्तिपूर्वक सीखते हैं, जिसे बौद्धिक रूप से पढ़ाना असंभव न भी हो, तो कठिन जरूर है।

विद्याश्रम की महत्वाकांक्षा अपने लक्ष्यों को आगे बढ़ाते रहने की रही है, लेकिन हमें पता है कि हमें क्या जरूर करना चाहिए। कुछ परिवारों के अभिभावक आधुनिक और आधुनिकतावादी एजेंडे से मेल करते नहीं चल पाते हैं। हमें समुदायों के साथ और अधिक परियोजनाएं स्थापित करने की जरूरत है; साथ ही हर बच्चे के घरेलू जीवन की निजी समझ भी हमें रखनी होगी। हममें अभिभावकों के स्कूल के साथ संपर्क कर सकने के और भी तरीके खोजने होंगे, ताकि वे स्कूल को अपना कह सकें।[11] हमें शिक्षकों को इस बारे में भी प्रशिक्षित करना होगा कि वे स्कूल और घर के बीच के अंतर को ज्यादा कल्पनाशील तरीके से पाट सकें और भारतीय समाज के 'कौन क्या है' वाले विचार से बाहर निकल सकें। हमें एक ऐसे पाठ्यक्रम और शैक्षिक योजना की जरूरत है जो ज्यादा बेहतरीन तरीके से तस्वीरों, आख्यानों, आवाजों, कामों और खेल का इस्तेमाल कर सके।

लेकिन मैं विनम्रता और गर्व से अपने स्कूल का नाम लेना चाहती हूं कि हमारे विद्यालय विद्याश्रम ने साबित किया है कि समावेशी अध्ययन को वास्तव में हासिल किया जा सकता है।

समाधान तो तैयार ही थे, बस उन्हें व्यवहार में लाया गया। इसमें दोहरी प्रतिबद्धता है जिसके बारे में पहले ही बता चुकी हूं – एक उत्तर-औपनिवेशिक सजगता विकसित करना कि सारे भारतीय एक हैं और हमारे सभी बच्चों को एक जैसे विशेषाधिकारों के तहत धनी-मानी घरों के बच्चों की तरह ही उम्दा तालीम हासिल करने का हक है। और, तकनीक का विकास करना – उपकरण, संसाधन, शिक्षण का तरीका, शिक्षक – और इस विश्वास को व्यवहार में लाना। जो लोग भारत में साक्षरता अनुपात को लेकर चिंता जाहिर करते हैं, मेरी सहानुभूति उनके साथ है। वे लोग भारत में साक्षरता बढ़ाने की कोशिश करते हैं। उनके प्रति मेरे लेख और हमारे स्कूल में, उनकी एक अप्रत्यक्ष-सी आलोचना होती है: साक्षरता की नहीं, बल्कि उत्कृष्ट शिक्षा की जरूरत है। वरना हमें यह काम दोगुना करना होगा और हमारे मौजूदा वृद्धि दर से हमारे पास तो इतना वक्त ही नहीं है कि हम अपनी आबादी को पहले साक्षर बनाएं और उसके बाद उन्हें उत्कृष्ट शिक्षा मुहैया कराएं। साक्षरता बढ़ाने की कोशिश औपनिवेशिक अवचेतना पर आधारित है: उनके लिए साक्षरता, हमारे लिए शिक्षा। विद्याश्रम, आम हो या खास, सबके लिए उत्कृष्ट शिक्षा देने का एक मॉडल है। ❑

पाद-टिप्पणियां

1. निश्चित रूप से यह महज भारत की समस्या नहीं है। यहां तक कि अमेरिका जैसे बड़े, पुराने और वैभवशाली लोकतंत्र में भी पब्लिक स्कूलिंग को 'एक वायदा तोड़ने से भी बुरा....' बताया जाता है, क्योंकि यहां भी सिर्फ मात्रात्मक स्तर पर ही पब्लिक स्कूलिंग हासिल की जा सकी है, न कि वैसी गुणवत्तापूर्ण। यह नाकामी हमारे लोकतांत्रिक सिद्धांतों का सीधा उल्लंघन है।

   मोरटाइमर जे एडलर, द पेडिया प्रपोजल: एन एडुकेशनल मैनिफेस्टो, मैकमिलन पब्लिशिंग कं., 1982 पृ. 5 और देखें, ए लॉरेन्स क्रेमिन, द जीनियस ऑफ अमेरिकन एडुकेशन । होरास मान लेक्चर 1965, यूनिवर्सिटी ऑफ पिट्सबर्ग प्रेस, पिट्सबर्ग, 1965; और ए. लॉरेन्स क्रेमिन, पाप्युलर एडुकेशन एंड इट्स डिसकंटेंट्स। हार्पर एंड रॉ, न्यू यॉर्क, 1989.

2. दिलचस्प है कि शिक्षा विशेषज्ञ न होने के बावजूद जवाहर लाल नेहरू ने भी भारतीय शिक्षा पद्धति की दो समस्याओं का जिक्र किया है। उन्होंने इसे 'व्यवस्था' या 'संसाधन' कहा और 'मूल्यों का प्रश्न' भी। देखिए, अलेक्जेंडर रॉबिन, कल्चर एंड पीडॉगोगीः इंटरनेशनल कॉम्पैरिजन इन प्राइमरी एडुकेशन। ब्लैकवेल पब्लिशर्स, ऑक्सफोर्ड, 2000, पृष्ठ 100.

3. यह मेरा विशेषाधिकार है कि मैं किसी स्कूल की व्यवस्था, इसके प्रबंधन की प्रक्रियाओं और इसे निर्देश देने के बारे में साधिकार बात कर सकती हूं। मेरी दिलचस्पी भारतीय शिक्षा व्यवस्था की समस्याओं और इसके समाधान में है। लेकिन मैं कैलिफॉर्निया के मशहूर शिक्षाविद् पेड्रो नॉगवीयर से सहमत हूं कि स्कूलिंग के बारे में कुछ कहने के लिए आपको स्कूल में होना चाहिए। पेड्रो नॉगवीयर, मुनरो सेंटर फॉर सोशल इन्क्वायरी में दिया गया व्याख्यान, पिट्जर कॉलेज, क्लेजमॉन्ट, 8 फरवरी, 2011. इस विषय में मेरी विस्तृत कार्य आने वाली किताब, ए पोस्ट-कॉलोनियल स्कूल इन ए मॉडर्न वर्ल्ड में है।

4. हमने जब काम को विद्वानों के सामने रखा तो हमें अपनी कोशिशों में काफी चुनौतियों का सामना करना पड़ा। कई विद्वान और शिक्षाविदों के मुताबिक, वर्ग-विभाजन इतना जड़ें जमाए हुए है कि बच्चे खुद को लेकर आत्म-चेतन हो जाते हैं। संदर्भ चाहे जो हो, वस्तुतः कुछ मासूमियत-भरे अंतरों को ही लें। मसलन, ऐसे लोग जिनके पास पालतू जानवर हों, स्वतः एक आर्थिक विभाजन में तब्दील हो जाता है। चूंकि जैसा हम जानते हैं, भारतीय संदर्भ में पालतू पशु रखना मध्यवर्ग का परिचायक है। लेकिन हमारे मध्यस्थों में से किसी ने भी नियमित तौर पर एक वैकल्पिक दुनिया रचने की कोशिश नहीं की, जिससे दुनिया बच्चों के लिए भी उतनी ही वास्तविक हो, जितनी वयस्कों के लिए। समाधान के हमारे तरीकों में हमारा विश्वास इसलिए है, क्योंकि हमने इसे कामयाबी से लागू भी किया है। हमारे बच्चों में किसी वर्ग-विभाजन के दीर्घकालिक लक्षण नहीं दिखते, वर्ग की जो भी चेतना (अल्पावधि) उठती भी है, मसलन एक बढ़िया बैग या ज्यादा कीमती टिफिन डब्बा, या बढ़िया सिला हुआ कपड़ा, ऐसी बातें हैं, जिन पर काबू पाया जा सकता है। मोटे तौर पर

इसके बाद इसे भुला दिया जाता है। इसके लिए शिक्षकों द्वारा सायास तैयार किए गए कक्षा की अपनी एक दुनिया का धन्यवाद। मैं यहां पोषण की समानता की चर्चा को शामिल नहीं कर रही, कुछ छात्रों को मुफ्त भोजन देकर हमें इस तरफ भी ध्यान देना होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि एक स्वयंसिद्ध रणनीति है, इसकी सामान्य अनुगूंज सरकारी स्कूलों में हाल में शुरू की गई 'दोपहर का भोजन' की नीतियों में दिखता है।

5. गांधी की योजनाओं के लिए, देखिए हुमायूं कबीर, एडुकेशन इन न्यू इंडिया, ग्रीनवुड प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1977, खासकर अध्याय 2.
6. हम मेरीज मॉन्टेसरी सेक्शन, वाराणसी, 1991.
7. हम किसी बच्चे के साथ यह सबसे बड़ी बुरी बात मानते हैं कि उसे सार्वभौमिक रूप से पढ़ाए जाने वाले तथ्यों की बजाय सिर्फ स्थानीय रूप से घटने वाली या समुदाय आधारित अवधारणाएं या तथ्य पढ़ाए जाएं। चाहे यह सार्वभौम पश्चिम के इस शब्द की व्यंजना के ही रूप में क्यों न हो। गरीब मुस्लिम बच्चों को पढ़ाने के लिए मदरसे मूल रूप से स्थानीय इतिहास ही पढ़ाते हैं, प्रत्यक्ष रूप से या मूलतः अपने छात्रों की सामाजिक गतिहीनता के लिए निंदा करते हैं। मैंने इस बात की विस्तार से चर्चा अपने लेख 'हिस्ट्री एंड द नेशन' (नीता कुमार, द पॉलिटिक्स ऑफ जेंडर, कम्युनिटी एंड मॉडर्निटी : ऐसेज ऑन एडुकेशन इन इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 2007, अध्याय 2) में की है, जहां मैंने इस बात पर जोर दिया है कि वैश्विक या राष्ट्रीय इतिहास और स्थानीय इतिहास में शक्ति के प्रश्न पर कोई अच्छा-बुरा रिश्ता नहीं होता। किस तरह का इतिहास छात्रों को ताकत देता है? हमारा कर्तव्य है कि हम छात्रों को सशक्त करें। हमें विश्व इतिहास की खामियों की ओर भी उन्हें संवेदनशील बनाने की जरूरत है और स्थानीय इतिहास को एक अलग काम के रूप में खड़ा करने के तरीके खोजने की भी।
8. जॉन डेवी के बारे में सेंट स्टीफन्स एम. फिशमैन और ल्युसिले मैकार्थी में हुई चर्चा, जॉन डेवी एंड द चैलेन्ज ऑफ क्लासरूम प्रैक्टिस टीचर्स कॉलेज, कोलंबिया यूनिवर्सिटी, न्यू यॉर्क, 1998. कीरन एगन, चिल्ड्रन्स माइंड्स, टॉकिंग रैबिट्स एंड क्लॉकवर्क ऑरेन्जेज: एसेज ऑन एडुकेशन, टीचर्स कॉलेज, कोलंबिया यूनिवर्सिटी, न्यू यार्क, 1999; और हंटर मॅकइवान और कीरन एगन (सं.) नैरेटिव्स इन टीचिंग, लर्निंग एंड रिसर्च, टीचर्स कॉलेज, कोलंबिया यूनिवर्सिटी, न्यू यॉर्क, 1995.
9. मैंने एनी बेसेंट के सेंट्रल हिन्दू स्कूलों, हिन्दू सुधारवादी स्कूलों (जैसे आर्य महिला स्कूल) और सामुदायिक स्कूलों जहां भारतीय पश्चिमी शिक्षण को मिश्रित करने की कोशिश की गई, मसलन खत्री और अग्रवाल स्कूल जैसे भारत के राष्ट्रवादी स्कूलों के संदर्भ में इसका विस्तृत अध्ययन किया है। देखिए, नीता कुमार, लेसन्स फ्रॉम स्कूल्स: द हिस्ट्री ऑफ एडुकेशन इन बनारस। सेग पब्लिकेशन, दिल्ली और थाउजंड ओक्स, सीए, 2000, अध्याय 4.
10. प्रशासक शिक्षक के रूप में और शिक्षक छात्र के रूप में, किसी विशेष प्रशिक्षण के मकसद के लिए। इसमें शिक्षकों को प्रेरित और ऊर्जावान बनाने के लिए वही मानक अपनाए जाते हैं और इसको विशेष प्रकार के शिक्षण से हासिल किया जाता है। मिसाल के तौर पर, ऐसे समूह बनाना जो स्वतंत्र रूप से काम करते हों। साथ ही 'बॉस-प्रबंधन' की बजाय 'नेतृत्व-प्रबंधन' का समांतर विचार भी है। इसमें कोशिश की जाती है कि कर्मचारी महसूस करें कि वे वही काम करने की कोशिश करें, जो आप करवाना चाहते हैं – इस मामले में यह प्रभावी अध्यापन है। देखिए, विलियम ग्लासर, द क्वालिटी स्कूल: मैनेजिग स्टूडेंट विदआउट कोर्सन, हार्पर पेरेनियल, न्यूयॉर्क, 1990; और विलियम ग्लासर, द क्वॉलिटी स्कूल टीचर, हार्पर पेरेनियल, न्यू यॉर्क, 1993.
11. पीटर सेंग, एट अल, स्कूल्स दैट लर्न, निकोलस बियरले पब्लिशिंग लंदन, 2000.

संदर्भ

सबिहा बिलगी और सेकिन ओजसोय, 'जॉन देवेज ट्रेवेलिंग्स इन टू द प्रोजेक्ट ऑफ तुर्किश मॉडर्निटी', इन थॉमस पोपकेटविज (एड.), इन्वेंटिंग दी मॉडर्न सेल्फ एण्ड जॉन देवे. पालग्रेव मैकमिलन, प्रेस, 2005 पृष्ठ 153-177.

ब्रायन काल्डवेल, सेल्फ मैनेजिंग स्कूल (एजुकेशन पॉलिसी पर्सपेक्टिव्स) रॉटलेग, इलस्ट्रेटेड एडिशन, 1988.

कीरन एगन, एजुकेशन एंड साइकॉलजी: प्लेटो, पियाजेट एंड साइंटिफिक साइकॉलजी। टीचर्स कॉलेज, कोलंबिया यूनिवर्सिटी, न्यू यॉर्क, 1983.

नीता कुमार, फ्रेंड्स, ब्रदर्स, एंड इनफॉरमेंट्स: फील्डवर्क मेमॉयर ऑफ बनारस, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफॉर्निया प्रेस, बर्कले, 1992.

नीता कुमार, द प्रॉब्लम ऑफ ट्रेनिंग टीचर्स एंड क्रिएटिंग क्लासरूम स्ट्रेटजीज, समावेशी शिक्षा पर देशकाल सोसायटी सम्मेलन में प्रस्तुत शोध, दिल्ली, 2006.

क्लिफोर्ड मेस, रमोना मेलले कुत्री, पी. क्लिंट रोजर्स एंड फिदेल मॉन्टेरो, अंडरस्टैंडिग द होल स्टूडेंट: होलिस्टिक मल्टीकल्चरल एजुकेशन, रॉमैन एंड लिट्लफील्ड एजुकेशन, लैनहम, मेरीलैंड, 2007.

थॉमस एस. पोपकेविट्ज, 'इन्वेंटिग द मॉडर्न सेल्फ एंड जॉन देवे: मॉडर्निटीज एंड द ट्रेवलिंग ऑफ प्रैगमैटिज्म एन. एजुकेशन – इंट्रोडक्शन', थॉमस एस. पोपकेविट्ज, (सं) इन्वेंटिंग द मॉडनग सेल्फ एंड जॉन देवे में, पालग्रेव मॅकमिलन प्रेस, 2005, पृष्ठ 3-36.

रेजी राउटमैन, लिटरेसी एट द क्रॉसरोड्स: क्रूसियल टॉक अबाउट रीडिंग, राइटिंग एंड अदर टीचिंग डाइलेमाज, हैनीमैन, पोर्ट्समाउथ, एनएच, 1996.

पढ़ाई का सकारात्मक एवं मददगार परिवेश बनाना

आप क्या सीखेंगे:

- कक्षा प्रबंधन का महत्व
- शिक्षण परिवेश को सुविधाजनक बनाना
- कक्षा कार्यक्रम तैयार करना
- अच्छे आचरण के निर्माण के अनुकूल प्रबंधन शैली अपनाना
- कक्षा के नियम बनाना एवं अभिभावक को संलग्न करना
- सकारात्मक मजबूती उपलब्ध कराना

कक्षा प्रबंधन

आपके छात्रों के बीच अच्छा आचरण विकसित हो, इसके लिए आवश्यक है कि उनकी कक्षा का परिवेश निश्चित रूप से सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित हो। जब हम कक्षा प्रबंधन के बारे में बात करते हैं, तो हममें से बहुत सारे लोग छात्रों के व्यवहार को नियंत्रित करने के बारे में सोच सकते हैं या इस बात को लेकर परेशान हो सकते हैं कि हम कक्षा को नियंत्रित कैसे करेंगे। हकीकत यह है कि छात्रों के व्यवहार या गलत व्यवहार पर हमारी प्रतिक्रिया क्लासरूम प्रबंधन की योजना की आखिरी कार्रवाई होगी। सुव्यवस्थित कक्षा में न यह कार्रवाई, भरोसे के साथ सकारात्मक आनुशासनिक तकनीक के तौर पर होगी, और बहुत कम समय लेगी तथा इसके कारण कक्षा में की जा रही पढ़ाई बस जरा सा बाधित होगी। इसके अनुसार काम करने के लिए आपको कक्षा प्रबंधन की योजना की जरूरत पड़ेगी, जिसके कई घटक होंगे। इनमें से कुछ घटकों की चर्चा यूनेस्को, बैंकाक द्वारा तैयार की गई टूल किट फॉर क्रिएटिंग इनक्लूसिव लर्निंग फ्रेंडली क्लासरूम की पुस्तिका 4 एवं 5 में की गई है। यहां हम दूसरे घटकों की चर्चा करेंगे।

योजना तैयार करने का पहला काम यह तय करना है कि वास्तव में कक्षा प्रबंधन का अर्थ क्या होता है। जब हम कक्षा प्रबंधन शब्द का इस्तेमाल करते हैं तो इसका संबंध उन प्रक्रियाओं, रणनीति एवं शैक्षणिक तरीकों से होता है जिसका इस्तेमाल शिक्षक कक्षा का ऐसा परिवेश बनाने के लिए करते हैं जो पढ़ाई को आगे बढ़ाने के साथ-साथ छात्र एवं छात्रों के समूह के व्यवहारगत एवं शिक्षण संबंधी कार्यकलापों को इस परिवेश के तहत विकसित एवं व्यवस्थित करता है। इस तरह प्रभावी कक्षा प्रबंधन ऐसा परिवेश बनाता है जो हमारे लिए शिक्षण कार्य में तथा सभी छात्रों के व्यवहारगत विकास में सहायक होता है। अप्रभावी कक्षा प्रबंधन अव्यवस्था पैदा करता है हमारे छात्र नहीं जानते कि हम उनसे क्या अपेक्षा करते हैं, वे नहीं समझते कि किस तरह का व्यवहार करना है या जवाब देना है, वे अपनी सीमाओं को नहीं जानते और नहीं जानते कि गलत व्यवहार का परिणाम क्या होगा। प्रभावी कक्षा प्रबंधन बहुत ही अहम एवं कठिन है, और किसी भी नए शिक्षक को निश्चित रूप से इस कला की पूरी जानकारी होनी चाहिए। यहां तक कि अनुभवी शिक्षकों को भी कई बार ऐसी स्थितियों का सामना करना पड़ता है जब कोई छात्र या पूरी कक्षा उनके प्रबंधन के उनके पुराने तरीके को चुनौती देने लगता है और उन्हें कक्षा की स्थितियों से निपटने के लिए नया रास्ता तलाशने को बाध्य कर देता है। कक्षा वह जगह है जहां छात्र पढ़ने के लिए एकत्रित होते हैं। इस तरह क्लासरूम का ऐसा सुरक्षित एवं व्यवस्थित परिवेश बनाना, जो सभी छात्रों के लिए पढ़ाई का आदर्श परिवेश बनाए, शिक्षकों के लिए खुद को बनाए रखने का कौशल है।

पढ़ाई के लिए सुविधाजनक परिवेश बनाना

क्या आप कभी भीड़ भरे कमरे में रहे हैं, बहुत सारे लोगों की भीड़ हो या फिर फर्नीचर जैसे चीजों से कमरा पटा पड़ा हो? आपको तुरंत कैसा लगा? क्या कुछ समय बाद आपकी सोच कुछ बदली? कमरे में प्रवेश करते हुए, हममें से बहुत सारे लोग शुरू में आश्चर्य में पड़ सकते हैं, लेकिन जब वास्तव में हम काम करना शुरू कर देते हैं और दूसरों के साथ मिलते-जुलते हैं तो हमारे अंदर नकारात्मक सोच पैदा होने लगती है। हम निराश या क्रोधित हो सकते हैं,या हम किसी कोने में दुबक सकते हैं और दूसरों से बचने की कोशिश कर सकते हैं या कमरे के सामानों पर गिरने या टकराने से बचने की कोशिश कर सकते हैं।

जिन कक्षाओं में जगह की व्यवस्था ठीक तरह से नहीं रहेगी, वहां हमारे छात्र भी ऐसा ही महसूस सकते हैं। इसकी प्रतिक्रिया में गुस्से या भय के तहत वे गलत व्यवहार भी कर सकते हैं। ऐसे में कक्षा में जगह की सुव्यवस्था ऐसे गलत व्यवहारों को रोक सकती है। यह शिक्षणकार्य कुशलतापूर्वक चलाने में भी सहायक हो सकती है।

जहां तक कक्षा के सारे पहलुओं का सवाल है, तो कक्षा कैसे व्यवस्थित होगी यह आपकी एवं आपके छात्रों की प्राथमिकताओं पर निर्भर करता है। जो आपको सुविधाजनक लगता है, हो सकता है कि वह वही नहीं हो जो आपके छात्रों को सुविधाजनक लगता है। ऐसे में वर्ष के प्रारंभ में अपनी कक्षा लगाएं एवं अपने छात्रों से पूछें कि क्या वे कक्षा की व्यवस्था से संतुष्ट हैं? बेहतर होगा, आप छात्रों को समूहों में बांट दें और हर समूह से कमरे के चारों तरफ देखने को कहें, कमरे में रखे सामानों को देखने और फिर चित्र या नक्शा बनाकर बताने को कहें कि वे किस तरह अपने कमरे को सजाना चाहेंगे, विशेषकर वैसी स्थिति में जब उनकी कक्षा में छात्रों की संख्या अधिक हो। अपने छात्रों की 'व्यक्तिगत' कक्षा को व्यवस्थित करने में उनके चित्रों एवं नक्शों में रेखांकित कल्पनाओं की मदद लें। एक या दो सप्ताह तक इस व्यवस्था को आजमाएं और तब छात्रों से पूछें कि क्या वे सुविधाजनक महसूस कर रहे हैं? अगर वे ऐसा महसूस करते हैं कि कोई नई व्यवस्था ज्यादा सुविधाजनक हो सकती है तो कक्षा की व्यवस्था को बदल दें। साथ ही आपको जब कभी ऐसा लगे कि आपके छात्र कक्षा में बैठने या पढ़ने में ऊब रहे हैं तो कक्षा की व्यवस्था बदल दें।

अपने छात्रों की 'व्यक्तिगत' कक्षा को व्यवस्थित करने में उनके चित्रों एवं नक्शों में रेखांकित कल्पनाओं की मदद लें। एक या दो सप्ताह तक इस व्यवस्था को आजमाएं और तब छात्रों से पूछें कि क्या वे सुविधाजनक महसूस कर रहे हैं?

आप और आपके छात्र कक्षा की जगह को किस तरह व्यवस्थित करेंगे, इसके बारे में सोचने के लिए कुछ जानकारियां यहां दी जा रही हैं।[1] यह सूची सम्पूर्ण नहीं है। क्या आप कुछ और चीजों के बारे में सोच सकते हैं?

हर कोई दिखे: आपको हर समय हर छात्र दिखना चाहिए ताकि आप उनके काम एवं व्यवहार की मॉनिटरिंग कर सकें। आपको अपनी डेस्क से क्लासरूम का दरवाजा भी नजर आना चाहिए। ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि छात्र बगैर घूमे-फिरे आपको और जहां से आप पढ़ा रहे होते हैं उस जगह को देख सकें।

हर कोई बैठा रहे (भीड़ के एहसास से बचने के लिए): जिस कक्षा में अधिक छात्र होते हैं, वहां जगह भी एक समस्या होती है। उपलब्ध जगह का बेहतर इस्तेमाल करने के लिए तीन मुख्य उपायों का ख्याल रखें। पहला, अनावश्यक फर्नीचरों को हटा दें। डेस्क की जगह चटाई का इस्तेमाल करें। छात्रों को जिन चीजों की रोज-रोज जरूरत नहीं पड़ती उन्हें रखने के लिए दीवार से जुड़ी आल्मारियों या फर्श से ऊपर किसी जगह का इस्तेमाल करें। अगर आपकी कक्षा में छात्रों के सामानों को रखने के लिए कैबिनेट है तो इसे कक्षा के दरवाजे के ठीक बाहर रखें। अगर संभव हो, अपने सामानों, पाठ्य सामग्री और कोई दूसरी ऐसी चीजों, जिसका इस्तेमाल आप क्लास के वक्त नहीं करते, को शिक्षक लॉज या बाहर किसी अन्य सुरक्षित जगह पर रखें। अगर आपको वास्तव

[1]Adapted from: Classroom Management – Managing Physical Space. Collaborative for Excellence in Teacher Education (CETP), National Science Foundation. http://www.temple.edu/CETP/temple_teach/cm-space.html [accessed online on 10/20/2005] से उद्धृत

में बड़े आकार के शिक्षक डेस्क की जरूरत नहीं हो तो छोटे डेस्क की मांग करें।

दूसरा उपाय यह है कि आप सृजनशील तरीके से पढ़ाएं तथा भीड़भाड़ के एहसास को कम करने के लिए कक्षा को पारस्परिकता भरा बनाएं। पूरी घंटी के एक हिस्से, जैसे साठ मिनट की घंटी में बीस मिनट, का ही इस्तेमाल व्याख्यान के लिए करने की कोशिश करें। और इस अवधि में एक ही साथ बहुत सारी बातें बताने के बजाय किसी एक या दो महत्वपूर्ण विषय या अवधारणा पर ध्यान केंद्रित करें। आपकी कही बातों पर छात्रों का ध्यान केंद्रित रहे, इसके लिए यह अधिकतम समय है। इसके बाद छात्रों को कई छोटे समूहों में बांट दें ताकि उन्हें बहुत सारे चेहरों को देखने की बजाय कुछ ही चेहरा देखना पड़े। इन समूहों का गठन लड़का बनाम लड़की के आधार पर करने की बजाय जहां कहीं संभव हो, लड़के-लड़कियों का मिला-जुला समूह बनाएं। प्रत्येक समूह को एक दूसरे समूह का पूरक काम सौंपें। जैसे, अगर एक समूह सोचने की कोशिश कर रहा हो कि वह कितना गोलाकार घेरा बना सकता है तो दूसरा समूह यह सोचने की कोशिश करे कि वह कितना अधिक वर्गाकार घेरा बना बना सकता है। कक्षा समाप्ति का समय नजदीक आने पर, उन्हें वापस लाएं एवं हर समूह से बताने को कहें कि उन्होंने क्या सीखा।

इसी तरह तीसरा उपाय यह है कि यथासंभव कक्षा के बाहर की जगह का इस्तेमाल करें। औपचारिक शिक्षण के लिए यह जगह अच्छा संसाधन हो सकती है। यह जगह बहिरंग कक्षा है जिसके बारे में बच्चे अपनी पढ़ाई के हिस्से के रूप में पता लगा सकते हैं। यह जगह उन्हें भीड़-भरी कक्षा से ज्यादा आनंददायक लगेगी। यह बच्चों के सामाजिक एवं संज्ञानात्मक ज्ञान विकसित करने की महत्वपूर्ण जगह है। स्कूल की यह जगह आपको बच्चों के शिक्षण परिवेश में विविधता लाने और सहयोग, स्वामित्व, संपत्ति, आदर एवं दायित्व से जुड़े महत्वपूर्ण पाठों को विकसित करने का अवसर प्रदान करती है।[2] कक्षा में जो पढ़ाई होती है उसकी संपुष्टि के लिए इन जगहों के विभिन्न हिस्सों का इस्तेमाल गतिविधि केंद्र के तौर पर किया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप, ज्यामितीय आकारों के उदाहरण के बारे में छात्रों से यह बताने को कहा जा सकता है कि मैदान को कितने ज्यामितीय आकारों में बांटा जा सकता है। इसके बाद उनसे पेड़ के नीचे बैठकर इन आकारों के बारे में लिखने को कहा जा सकता है। बच्चों की प्रगति को मॉनिटर करें! कक्षा खत्म होने के दस मिनट पहले उन सबों को कक्षा या इसके बाहर ले आएं एवं उन्हें अपने-अपने निष्कर्षों को प्रस्तुत करने को कहें।

फर्नीचरः अगर आपकी कक्षा में पर्याप्त जगह है, तो छात्रों के डेस्क को विभिन्न तरीकों, जैसे गोलाकार, या वाद विवाद के लिए यू आकार में, सामूहिक चर्चा के लिए वर्गाकार तथा जांच या व्यक्तिगत कार्य के लिए कतार में, रखने पर विचार करें। डेस्क को सजाते वक्त आने-जाने के रास्ते के बारे में भी सोचें। जिन जगहों का इस्तेमाल आने-जाने के रास्ते के तौर पर होता है उन्हें अवरोधित नहीं किया जाना चाहिए तथा वह जगह हर किसी के लिए आसानी से उपलब्ध रहनी चाहिए। विशेष इस्तेमाल वाली जगह को किताब की आलमारी, टेबल या दरी आदि के लिए इस्तेमाल करने पर विचार करें। अगर कमरे को विभाजित करने या छात्रों के कार्यों को प्रदर्शित करने के लिए दीवार की जगह की जरूरत हो तो कम खर्च वाले विकल्पों पर विचार करें, जैसे आलमारी का पिछला हिस्सा कमरे को बांटने का काम कर सकता है या इसके लिए ताड़ या बांस के पत्तों से बुनी गई चटाई का इस्तेमाल किया जा सकता है। ऐसी चटाइयां छात्र खुद या उनके परिवार वाले बना सकते हैं। जिन स्कूलों में कमरे को बांटने वाली दीवार नहीं हो वहां इन चटाइयों का इस्तेमाल कमरे को बांटने के लिए भी किया जा सकता है।

केंद्रः गतिविधि-केंद्र छात्रों या छात्रों के छोटे समूह को परियोजना या अन्य गतिविधियों से जुड़े काम को अपनी गति से करने का अवसर उपलब्ध कराता है। कक्षा के अंदर एक जगह बनाई जानी चाहिए जहां काम किया जा सके, औजारों एवं सामानों को रखा जा सके तथा निर्देश टांगे जा सकें। जिन कक्षाओं में छात्रों की संख्या बहुत अधिक हो, उनके लिए गतिविधि-केंद्र स्कूल परिसर की दूसरी जगहों पर बनाया जा सकता है। छात्र जो काम करना चाहते हैं उनसे जुड़े सामान वे गतिविधि-केंद्र पर ले आएंगे।

[2]Malone, Karen and Tranter, Paul. "Children's Environmental Learning and the Use, Design and Management of Schoolgrounds," Children, Youth and Environments, Vol. 13, No. 2, 2003.

निर्देश सामग्री एवं शिक्षण संसाधनः पुस्तकों एवं निर्देश की अन्य सामग्रियां ठीक से रखी जानी चाहिए ताकि वे आसानी से उपलब्ध हो सकें। चॉक, रूलर, कागज, पेंट, कैंची जैसे संसाधनों को इस तरह रखा जाना चाहिए कि दूसरे छात्रों को परेशान किए बगैर ये छात्रों को मिल जाएं। पोर्टेबल चॉकबोर्ड, इजल्स (चित्रफलक), चार्टपेपर एवं टेबल जैसे शिक्षण व निर्देश सामग्रियों को इस तरह रखा जाना चाहिए कि उनका इस्तेमाल तो हो, लेकिन यह इस्तेमाल रास्ते या भीड़-भरी कक्षा में नहीं हो। ऐसे भी ये सब कुछ खास जगह नहीं लेते।

छात्र-कार्यः अगर सही योजना नहीं हो तो छात्रों को कार्य संग्रह एवं उन्हें रखना बहुत जल्द भारी लगने लगेगा। कुछ शिक्षक इन्हें रखने के लिए व्यक्तिगत तौर पर फाइल-फोल्डर का इस्तेमाल करते हैं। हर छात्रों या छात्रों के समूह के लिए तथा हर छात्र या छात्रा द्वारा हर विषय के लिए फाइल बनाया जाना चाहिए। छात्रों के कामों को प्रदर्शित करने के लिए जगह की भी जरूरत होगी। यह जगह दीवार हो सकती है या फिर किसी रस्सी में छात्रों के कार्यों को क्लीप या टेप से नत्थी कर टांगा जा सकता है। छात्रों के हस्तकर्म से कमरे को सजाकर आकर्षक बनाया जा सकता है। अगर कक्षा में बहुत सारे बच्चे भी हों तो यह बहुत सुखद लगेगा।

छात्रों की भागीदारीः कक्षा की जगह के प्रबंधन में छात्र बहुत अधिक मददगार हो सकते हैं और यह छात्रों में उत्तरदायित्व की भावना जागृत करने में सहायक हो सकता है। वे छात्रों के कार्यों को टांग सकते हैं, बुलेटिन बोर्ड बना सकते हैं और घंटी की समाप्ति पर निर्देश सामग्रियों को ठीक से रख सकते हैं। जगह की समस्या को हल करने में भी छात्र सहायक हो सकते हैं। जब ऐसी समस्या उपस्थित हो कि छात्र आपस में धक्का-मुक्की करने लगें या उनके बैठने के लिए पर्याप्त जगह नहीं हो तो उनसे समाधान के बारे में सुझाव देने को कहें।

याद रखेंः अगर आपकी कक्षा का कमरा और इसका कामकाज आपके छात्रों और आपके बीच सहयोगी व्यवहार बढ़ाने वाला है तो अच्छा अनुशासन और छात्रों का सकारात्मक व्यवहार विकसित होगा।

कक्षा कार्यक्रम तैयार करना

जब हम कक्षा कार्यक्रम बनाते हैं, तो गलत व्यवहार का अवसर कम हो जाता है, क्योंकि छात्रों को मालूम होता है कि उनसे क्या अपेक्षित है और उन्हें क्या करना है। वे 'मिसकॉल' से बचने में भी मदद करते हैं। मिसकॉल का मतलब बच्चे के व्यवहार को गलत तरीके से कदाचार समझ लेना होता है। उदाहरण के लिए अगर कोई बच्चा यह नहीं जानता कि उसे पेंसिल कक्षा खत्म होने के बाद छीलनी चाहिए, न कि क्लास के दौरान; या फिर इसके लिए हाथ उठाकर अनुमति मांगनी चाहिए। इसके अलावा अगर छात्र को किसी काम को करने के आवश्यक कदमों की जानकारी है तो इस बात की बहुत अधिक संभावना होगी कि वे इसे व्यवस्थित तरीके से कर लें। ऐसे कामों के लिए कक्षा की जगह के अनुसार योजना और अपनी प्रबंधन शैली बनाएं (इसकी चर्चा हम नीचे करेंगे)। अगर कोई कार्यक्रम प्रभावी नहीं है तो इसे नया रूप देने में छात्रों को शामिल करें। यहां कुछ कक्षा कार्यक्रम दिए गए हैं जिसे आप और आपके छात्र तैयार कर सकते हैं।[3] क्या आप कुछ और कार्यक्रम सोच सकते हैं?

आवागमनः कक्षा में प्रवेश एवं निकास की योजना बनाएं। साथ ही साथ जो पढ़ाया जाने वाला है उसके अनुसार कक्षा की व्यवस्था में परिवर्तन करें। जैसे, अगर पूरी कक्षा लेने की जगह छात्रों के छोटे-छोटे समूहों की कला या विज्ञान की जांच परीक्षा लेनी है तो उसके लिए उपयुक्त व्यवस्था करें। साथ ही योजना इस तरह बनाएं कि छात्रों की व्यक्तिगत जरूरतें पूरी हो जाएं। जैसे, मान लें कि उन्हें पेंसिल की धार तेज करने की जरूरत हो या पढ़ाई का व्यक्तिगत सामान लेना हो तो यह सब काम आसानी से हो जाए।

गैर-शैक्षणिक कार्य : इन कामों में हाजिरी लेने, अनुमति या अनुपस्थिति आवेदन जमा करने या कक्षा को साफ-सुथरा रखने जैसे काम शामिल हैं। जहां संभव हो, इन कामों में छात्र मदद कर सकते हैं और विशेषकर वैसे छात्र जो यह मानते हैं कि उन्हें अपने कामों को दिखाना है। इनमें से कुछ कामों को शैक्षणिक कामों के रूप में भी

[3]Adapted from: Classroom Management – Classroom Rountines. Collaborative for Excellence in Teacher Education (CETP), National Science Foundation. http://www.temple.edu/CETP/temple_teach/cm-routi.html [accessed online on 10/20/2005

सामूहिक कार्य सहभागिता की शिक्षा देते हैं। ये छात्रों को साथ मिलकर काम करना सिखाते हैं और छात्र टीमवर्क के महत्व को सीखते हैं। किसी समूह के प्रत्येक टीम सदस्य के पास काम होना चाहिए और हर सदस्य को हर काम करने का मौका मिलना चाहिए।

किया जा सकता है, जैसे किसी दिन गणित घंटी में उपस्थित छात्रों का औसत निकालना।

सामग्री प्रबंधनः अगर पठन-पाठन की सामग्रियों के वितरण, संग्रहण एवं भंडारण का कार्यक्रम बना लिया जाए तो इन कामों को छात्र तेजी के साथ कर सकते हैं। अगर शैक्षणिक सामग्रियां पहले से तैयार एवं व्यवस्थित कर ली जाएं तो आप एक काम से दूसरे काम पर आसानी से जा सकते हैं और इसमें आपको बहुत कम समय लगेगा। हर दिन के लिए जरूरी सामानों की सूची बना लेनी चाहिए ताकि छात्रों को मालूम रहे कि उन्हें किन चीजों की जरूरत है और वे सक्रियता के साथ इसके लिए तैयार हो सकें एवं पहले जो काम हुआ उसके सामानों को ठीक से रखा जा सके या जमा किया सके।

सामूहिक कार्यः सामूहिक कार्य सहभागिता की शिक्षा देते हैं। ये छात्रों को साथ मिलकर काम करना सिखाते हैं और छात्र टीमवर्क के महत्व को सीखते हैं। किसी समूह के प्रत्येक टीम सदस्य के पास काम होना चाहिए और हर सदस्य को हर काम करने का मौका मिलना चाहिए। अपने छात्रों के साथ मिलकर काम सौंपने के लिए काम का विवरण एवं कार्यक्रम तैयार करें। यह काम उत्प्रेरक, टाइम कीपर, रिपोर्टर, प्रोत्साहक, प्रश्न करने वाला, सामग्री प्रबंधक या टास्क मास्टर का हो सकता है।

छात्रों एवं अभिभावकों के साथ मिलकर कक्षा के नियम बनाना

प्रभावी तरीके से काम करने के लिए हर कक्षा को नियमों की जरूरत होती है। इन नियमों को यदा-कदा 'अपेक्षाएं' या 'आचरण मानक' कहा जाता है। कक्षा के नियम एवं कार्यक्रम शिक्षकों की सोच के अनुसार बनते हैं। कक्षा में हम छात्रों के साथ किस तरह काम करते हैं, किस तरह नियम एवं कार्यक्रम बनाते हैं। यह मुख्यतः इन बातों पर आधार लेता है कि छात्र किस तरह सीखते हैं कि उन्हें किस तरह का व्यवहार करना है, तथा इसके बारे में हमारी क्या सोच है। एक ओर हममें से कुछ सोच सकते हैं कि छात्र ज्ञान के निष्क्रिय प्राप्तकर्ता होते हैं और उन्हें व्यवस्था को मानने तथा स्पष्ट रूप से पढ़ाई का लाभ हासिल करने की जरूरत होती है। परिणामतः हम निश्चित मानक नियमों एवं कार्यक्रम पर जोर देंगे। दूसरी ओर हम में से कुछ सोच सकते हैं कि छात्र सक्रिय, सकारात्मक, प्रेरित एवं अनोखे समस्या का समाधान करने वाले हैं। इसके परिणामस्वरूप हम छात्रों की पसंद को तरजीह दे सकते हैं।[4] हम छात्रों को शामिल कर कक्षा के नियम एवं रूटीन बनाते वक्त मध्यमार्गी रास्ता अपना सकते हैं जो कक्षा के अलग एवं अक्सर बदलते रहने वाली स्थितियों से निपटने के लिए लचीला होगा।

अक्सर हम कक्षा प्रबंधन में खड़ी हो सकने वाली व्यवहारगत समस्याओं को जानने एवं रोकने का ख्याल कर नियम बनाते हैं। नियम बनाने के संबंध में सामान्य दिशा-निर्देश निम्नलिखित हैं:

- सही आचरण से संबंधित कुछ ही नियम बनाएं – न तो आपको न ही आपके छात्रों को लंबी सूची याद रहेगी। इन नियमों को कक्षा में टांग दीजिए ताकि हर कोई इसे देख सके।
- कक्षा का परिवेश निर्विघ्न बनाने के मकसद से निम्न विषयों पर नियम बनाने या अपेक्षाएं तय करने पर विचार करें : (क) दिन या घंटी की शुरुआत एवं समाप्ति, साथ ही हाजिरी किस तरह ली जाएगी एवं इस अवधि में छात्र क्या कर सकते हैं एवं क्या नहीं कर सकते हैं; (ख) सामग्रियों एवं संयंत्रों का इस्तेमाल; (ग) अनपेक्षित जरूरतों के लिए अनुमति कैसे मांगी जाएगी (शौचालय जाने या पेंसिल छिलने के लिए) (घ) सीटवर्क एवं सामूहिक कार्य करने का तरीका एवं (ङ) छात्र किस तरह सवाल पूछ सकते हैं या जवाब दे सकते हैं।

[4]Mayeski, Fran. The Metamorphosis of Classroom Management. Mid-continent Research for Education and Learning. http://www.mcrel.org/pdfconversion/noteworthy/learners%5Flearning%5Fschooling/franm.asp

- ऐसे नियमों को चुनें जो कक्षा के परिवेश को व्यवस्थित बनाते हैं तथा सफल शिक्षण को बढ़ावा देते हैं। कुछ हरकतें, जैसे चाकलेट चूसना (गम च्यूइंग) या चुलबुलाहट, संभवतः शिक्षण कार्य को बाधित नहीं करेंगी, अगर वे शोरगुल पैदा करने या ध्यान भंग करने वाली न हों।
- जिन कक्षा नियमों को लेकर आप अनिच्छुक हैं या जिन्हें सही तरीके से लागू नहीं कर सकते, वैसे नियम नहीं बनाएं।
- यथासंभव स्पष्ट एवं समझ में आ सकने लायक नियम बनाएं। ये नियम व्यवहार की ओर इंगित करने वाले होने चाहिए। जैसे: "अपना हाथ-पैर अपने पास रखें" यह, 'झगड़ा नहीं करें' की तुलना में ज्यादा स्पष्ट और ज्यादा सकारात्मक है।
- ऐसे नियमों का चयन करें जो सर्वसम्मति से बनाए गए हों तथा स्कूल के सभी लोग उसका पालन करें। अगर छात्रों को मालूम हो जाए कि वे आपके क्लास में किसी खास तरह का व्यवहार नहीं कर सकते लेकिन दूसरी कक्षा में ऐसा कर सकते हें तो वे पता लगाने लगेंगे कि बगैर सजा पाए किस हद तक वे गलत व्यवहार कर सकते हैं।
- सबसे बढ़कर, कक्षा नियमों को बनाने में अपने छात्रों को भागीदार बनाएं। आप इस सिद्धांत के साथ शुरू कर सकते हैं कि '' आप जो चाहते हैं, वह इस कक्षा में कर सकते हैं, यदि आप जो कुछ करेंगे वह दूसरों, जैसे सहपाठी या आपके शिक्षक, के अधिकारों में दखल नहीं दे रहा हो।'' 'अधिकार आधारित' इस तरीके को अपनाते हुए अपने छात्रों से पूछें कि कौन से आचरण स्वीकार्य हैं और कौन से आचरण दूसरों के अधिकारों का उल्लंघन करने के कारण अस्वीकार्य हैं। इन अधिकारों को पूरा करने का नियम बनाएं एवं नियमों का उल्लंघन करने का दंड तय करें। याद रखें कि ये दंड छात्रों की पढ़ाई में मदद करने वाले हों एवं कदाचार की प्रकृति के अनुरूप हों; यानी छात्र एवं कक्षा, दोनों के हित में हों। इसके बाद आप अपने छात्रों से ''कक्षा का संविधान'' या ''कक्षा का नीति विषयक बोर्ड'' बनाने को कहें जिसे प्रमुखता के साथ कक्षा में प्रदर्शित किया जा सके। उनसे इसपर हस्ताक्षर करने को कहें ताकि वे इन नियमों को मानने एवं इनका उल्लंघन करने पर परिणाम भुगतने की सहमति जाहिर करें। अगर छात्र नियमों का उल्लंघन नहीं करने एवं ज्यादा वांछित आचरण करने के प्रति प्रतिबद्धता जाहिर कर दें तो गलत व्यवहार की घटनाएं कम हो जाएंगी।
- यह जानने के लिए कि किसी और नियम की जरूरत तो नहीं है, कक्षा के नियमों को नियमित रूप से दुहराते रहें। अगर जरूरत हो तो अपने छात्रों की प्रशंसा करें, और तब उनसे पूछें कि क्या किसी और नियम की जरूरत है।

अभिभावकीय भागीदारी

नियमों का पालन करने के प्रति अगर शिक्षक, अभिभावक तथा छात्र समान रूप से प्रतिबद्ध हों तो वह ज्यादा प्रभावी होगा। कुछ स्कूलों में इन सभी पार्टियों को मिलाकर एक ''काम्पेक्ट'' बना दिया जाता है। "काम्पेक्ट" एक सामान्य सहमति या करार है जिसमें स्पष्ट रूप से हर पक्षों के विशेष उत्तरदायित्वों का उल्लेख रखता है और उनमें से हर कोई उस पर हस्ताक्षर करता है। ऐसे किसी काम्पेक्ट का प्रारूप इस तरह का हो सकता है।[5] इस काम्पेक्ट पर पहली अभिभावक-शिक्षक या अभिभावक-शिक्षक-छात्र बैठक में चर्चा की जा सकती है। क्या आप इसे अपनाएंगे और कक्षा में अच्छे आचरण को बढ़ावा देने के लिए इसका इस्तेमाल अपने छात्रों एवं अभिभावकों को शामिल कर करेंगे?

माता-पिता/अभिभावक होने के नाते मैं

- अपने बच्चे, शिक्षकों तथा स्कूल का सम्मान एवं समर्थन करूंगा।
- अपने बच्चे की कक्षा के बारे में स्कूल की अनुशासन नीति का समर्थन करूंगा।
- पढ़ने के लिए बिल्कुल साफ-सुथरा, रोशनी वाली जगह उपलब्ध कराऊंगा तथा होमवर्क पूरा कराने की देखरेख करूंगा।
- अभिभावक-शिक्षक या अभिभावक-शिक्षक-छात्र की औपचारिक एवं अनौपचारिक बैठक में भाग लूंगा।

[5]Education World. Creating a Climate for Learning: Effective Classroom Management Techniques. http://www.education-world.com/a_curr/curr155.shtml [accessed online on 10/6/2005]

- अपने बच्चे से स्कूल में उसके/उसकी गतिविधियों के बारे में बात करूंगा।
- अपने बच्चे द्वारा टीवी देखने या पढ़ाई के समय में उसका ध्यान हटाने वाले उसके दूसरे कामों की मॉनिटरिंग करूंगा।
- हर सत्र में स्कूल या कक्षा की कम से कम एक गतिविधि में मदद करूंगा।
- अपने बच्चे को हर दिन कम से कम दस मिनट पढ़कर सुनाऊंगा या अपने बच्चे से पढ़कर सुनाने को कहूंगा।

छात्र होने के नाते मैं

- हमेशा बेहतर काम करने की कोशिश करूंगा।
- अपने सहपाठियों के प्रति नम्र एवं मददगार रहूंगा।
- अपने प्रति, अपने शिक्षक, अपने स्कूल तथा दूसरे लोगों के प्रति आदर का भाव रखूंगा।
- कक्षा एवं स्कूल के नियमों का पालन करूंगा।
- चोरी या बर्बाद नहीं कर संपत्ति का आदर करूंगा।
- अपना होमवर्क पूरा करूंगा एवं जरूरत के सामानों के साथ स्कूल आऊंगा।
- भरोसा करता हूं कि मैं पढ़ सकता हूं और पढ़ूंगा।
- हर दिन कम से कम पंद्रह मिनट घर पर पढ़ूंगा।
- स्कूल की गतिविधियों के बारे में हर दिन माता-पिता से बात करूंगा।

शिक्षक होने के नाते मैं

- हर बच्चे एवं उसके परिवार का आदर करूंगा।
- पढ़ाने के समय का सही इस्तेमाल करूंगा।
- शिक्षण के लिए अनुकूल सुरक्षित एवं सुविधाजनक परिवेश उपलब्ध कराऊंगा।
- हर बच्चे को उसे अपनी पूरी संभाव्यता के अनुकूल बढ़ने में मदद करूंगा।
- सार्थक एवं उपयुक्त होमवर्क उपलब्ध कराऊंगा।
- अभिभावकों को आवश्यक मदद उपलब्ध कराऊंगा ताकि वे बच्चों को दिए गए कामों को पूरा करने में मदद कर सकें।
- स्कूल एवं कक्षा के नियमों को सही तरीके से हमेशा लागू करूंगा।
- छात्रों एवं अभिभावकों को प्रगति मूल्यांकन एवं उपलब्धियों की जानकारियां उपलब्ध कराऊंगा।
- पढ़ाई को आनंदपूर्ण बनाने के लिए कक्षा में विशेष गतिविधियां कराऊंगा।
- पेशागत आचरण एवं सकारात्मक नजरिया रखूंगा।

इस करार को पूरा करने के लिए हमलोग साथ मिलकर काम करेंगे

हस्ताक्षरित

अभिभावक का हस्ताक्षर/दिनांक

छात्र का हस्ताक्षर/दिनांक

शिक्षक का हस्ताक्षर/दिनांक

आचरण एवं बेहतर प्रबंधन के मानक

कक्षा के नियम हमारे छात्रों के आचरण के मानक तय करते हैं, लेकिन शिक्षक के रूप में हम सब के लिए भी मानक होने चाहिए। आखिरकार, हम लोग अपने छात्रों के महत्वपूर्ण रोल मॉडल हैं।

- हमें अपने छात्रों को बताना चाहिए कि कक्षा में हर किसी (हमारे छात्र एवं हमसब) से हम किस तरह के आचरण की अपेक्षा रखते हैं और इन अपेक्षाओं पर नियमित चर्चा की जानी चाहिए।
- हमें अपने स्कूल प्रशासकों, दूसरे शिक्षकों एवं अभिभावकों को अपनी कक्षा के नियमों को निश्चित तौर पर बताना चाहिए ताकि वे उनको मॉनिटर करने में मदद कर सकें एवं नियमों के उल्लंघन की कोई नौबत न आने दे सकें।
- अपने छात्रों के साथ मिलकर हम जो नियम बनाते हैं उसे नियमित रूप से बगैर किसी पक्षपात के लागू किया जाना चाहिए।
- हमारी कक्षा के भीतर और बाहर क्या कुछ हो रहा है, इससे हमें लगातार अवगत होते रहना चाहिए। हमारी मॉनिटरिंग निश्चित तौर पर निपुण एवं निवारक होनी चाहिए।

- हमें गुस्सा नहीं करना चाहिए या आपा नहीं खोना चाहिए बल्कि हमें अपने छात्रों के लिए अच्छे आचरण एवं नियमों का पालन करने वाला रोल मॉडल होना चाहिए।
- अनुशासन जरूरी है, लेकिन इसका ध्यान छात्रों पर नहीं, बल्कि छात्रों के आचरण पर होना चाहिए। छात्रों के सम्मान की रक्षा होनी चाहिए।
- हमें अपने छात्रों को कार्यकलापों की डायरी रखने जैसे अपने आचरण की मॉनिटरिंग खुद करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। उन्हें आपस में एक-दूसरे के आचरण की मॉनिटरिंग भी करनी चाहिए।
- पढ़ाते वक्त हमें कठिन या अस्पष्ट शब्दों का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। सभी गतिविधियां क्रमानुसार और यथासंभव कम से कम व्यवधानों के साथ चलनी चाहिए।

शिक्षकों की कुछ विशेषताएं, छात्र जिनकी प्रशंसा करते हैं एवं जिन्हें हमारे अपने आचरण की मॉनिटरिंग का मुख्य हिस्सा होना चाहिए, वे हैं[6]

निष्पक्षता: छात्र इसे किसी शिक्षक का अति महत्वपूर्ण गुण मानते हैं। इसका मतलब हुआ कार्य देने, विवाद सुलझाने, सहायता देने एवं सहायक के रूप में छात्रों के चयन, या विशेष गतिविधियों में भाग लने वाले छात्रों के चयन जैसी तमाम गतिविधियों में निष्पक्ष बने रहना।

हास्य: छात्रों के साथ प्रसन्न भाव से पेश आने की योग्यता।

आदर: इसका मतलब है छात्रों के अधिकारों एवं भावनाओं के प्रति आदरभाव रखना।

शिष्टाचार: यह आदर का ही दूसरा लक्षण है।

खुलापन: छात्रों के लिए शिक्षक को वास्तविक व्यक्ति के रूप में देखने की जरूरत रहती है। शिक्षकों को अपनी सोच को स्पष्ट तौर से व्यक्त करनी चाहिए। साथ ही बताना चाहिए कि उनकी यह सोच किन हालातों के कारण बनी।

बातें सुनना: इसका मतलब हुआ, छात्र जब कुछ कह रहे हों तो उसका जवाब देना। आपको यह दर्शाने की जरूरत है कि आपने छात्र की बात सुनी है। साथ ही आपको उन्हें गलतफहमी या समझ को सुधारने का मौका देना चाहिए। जो बात आपने कही है परानुभूति दर्शाने के लिए उसे दुहरा सकते हैं या अपने हाव-भाव से बता सकते हैं।

हम अपने लिए खुद के द्वारा तय मानकों का पालन करने में कितना सक्षम हैं, यह अक्सर कक्षा में हमारी प्रबंधन शैली पर आधारित होती है।

कार्य-गतिविधि: कक्षा प्रबंधन का विवरण[7]

कक्षा प्रबंधन की आपकी शैली तय करेगी कि आप छात्रों के साथ कितनी कुशलतापूर्वक काम कर सकते हैं, उनके साथ कितना सकारात्मक रिश्ता बना सकते हैं तथा कितनी अच्छी तरह वे आपसे शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। इसका असर इस बात पर भी पड़ेगा कि आपके बच्चे कैसा आचार-व्यवहार करते हैं और आप किस तरह अपने छात्रों को अनुशासित करते हैं। यानी अपने बच्चों को सही व्यवहार सीखने में मदद करने के लिए आप सकारात्मक तरीकों को अख्तियार करने की बजाय नकारात्मक अनुशासन का इस्तेमाल करने के अभ्यस्त तो नहीं हैं। अपनी प्रबंधन शैली तय करने के पहले नीचे की तालिका में दिए गए हर बयानों को सावधानीपूर्वक पढ़ें। इसके बाद जवाब दें कि आप इन बयानों से सहमत हैं या असहमत या फिर यह बताना ज्यादा बेहतर होगा कि आप वास्तव में क्या करते हैं।

आगे, कथन 1-7 के लिए 'सहमत' की संख्या को जोड़ें, फिर 8-14, उसके बाद 15-21 और फिर 22-28 की 'सहमत' संख्या को जोड़ें। किस सेट के लिए आपकी सहमत की संख्या सबसे अधिक हुई? जिस सेट के सवालों से आप सबसे ज्यादा सहमत हैं वहीं आपकी पसंद की प्रबंधन शैली है। अगर किसी दूसरी शैली की कोई विशेषता आप में है तो घबराने की जरूरत नहीं।

उपरोक्त तालिका में कथन 1-7 अधिकारवादी शैली को दर्शाता है। ''मैं शिक्षक हूं, और काम अपने हिसाब से करूंगा।'' यह शैली

[6]Adapted from: Important Traits for Teachers. Collaborative for Excellence in Teacher Education ¼CETP½, National Science Foundation. http://www.temple.edu/CETP/temple_teach/cm-trait.html [accessed online on 11/28/2005]

[7]Developed based on: Teacher Talk. What is your classroom management profile? http://education.indiana.edu/cas/tt/v1i2/what.html [accessed online on 10/6/2005]

कथन	सहमत	असहमत
1. मेरा मानना है कि छात्रों की पढ़ाई के लिए कक्षा को निश्चित तौर पर शांत रहना चाहिए।		
2. मेरा मानना है कि छात्रों के बैठने की व्यवस्था गलत व्यवहार को कम करती है और पढ़ाई को बढ़ावा देती है।		
3. मैं पढ़ाते वक्त टोकाटोकी पसंद नहीं करता।		
4. छात्रों को दिए गए निर्देश का पालन करना चाहिए और सवाल नहीं करना चाहिए कि क्यों पालन करें।		
5. मेरे छात्र शायद ही कभी कोई पहल लेते हैं। मैं जो कुछ पढ़ा रहा होता हूं उसपर उन्हें ध्यान केंद्रित करना चाहिए।		
6. जब कोई छात्र दुर्व्यवहार करता है तो मैं आगे कोई बात किए बगैर उसे तुरंत सजा देता हूं या अनुशासित करता हूं।		
7. मैं विलंब से आने या होमवर्क पूरा नहीं करने जैसे किसी गलत-व्यवहार के लिए कोई बहाना स्वीकार नहीं करता।		
8. कक्षा में क्या पढ़ाया जा रहा है, इसे देखते हुए मेरी कक्षा की अलग-अलग व्यवस्था हो सकती है।		
9. मेरे छात्र क्या पढ़ रहे हैं और किस तरह पढ़ रहे हैं, मैं इन दोनों बातों का ख्याल रखता हूं।		
10. मेरे छात्र जानते हैं कि अगर उनके पास कोई प्रासंगिक सवाल है तो वे हमारे पढ़ाने के बीच में टोक सकते हैं।		
11. जब उचित कारण होता है तो मैं प्रशंसा करता हूं तथा छात्रों को और बेहतर करने के लिए प्रोत्साहित करता हूं।		
12. मैं अभ्यास पाठ के तौर पर छात्रों को परियोजना देता हूं, या उनसे अपनी परियोजना बनाने को कहता हूं। इसके बाद हम बात करते हैं कि उन्होंने क्या सीखा एवं उन्हें अभी और क्या सीखने की जरूरत है।		
13. मैं अपने नियमों एवं निर्णयों के कारणों को हमेशा बता देता हूं।		
14. जब कोई छात्र गलत व्यवहार करता है तो मैं नम्रता के साथ लेकिन कड़ी सजा देता हूं। अगर अनुशासन की जरूरत पड़ती है तो मैं सावधानी के साथ स्थितियों पर विचार करता हूं।		
15. मेरा मानना है कि छात्र ज्यादा अच्छी तरह शिक्षा हासिल कर सकते हैं, जब वे अपने मन के अनुसार काम कर सकें। यानी वही काम करें जिसे वे मानते हैं कि वे बेहतर तरीके से कर सकते हैं।		
16. मेरे लिए कक्षा के नियंत्रण से ज्यादा महत्वपूर्ण छात्रों का भावनात्मक रूप से ठीक रहना है। यह महत्वपूर्ण है कि मेरे छात्र मुझे अपने दोस्त की तरह देखें।		
17. मेरे कुछ छात्र सीखने के लिए प्रेरित रहते हैं, जबकि कुछ इसकी परवाह नहीं करते।		

कथन	सहमत	असहमत
18. किसी छात्र को अनुशासित करने के लिए क्या करना है, इसके बारे में मैं पहले से कोई योजना नहीं बनाता। मैं बस उसे हो जाने देता हूं।		
19. मैं किसी छात्र को मॉनिटर करना या उसे दंड देना नहीं चाहता, क्योंकि इससे उसकी भावनाएं आहत हो सकती हैं।		
20. अगर कोई छात्र कक्षा में बाधा डालता है तो मैं उस पर विशेष ध्यान देता हूं, क्योंकि निश्चित रूप से उसके पास कुछ कहने को रहता है।		
21. अगर कोई छात्र कमरे से बाहर जाने का अनुरोध करता है तो मैं बराबर उसे अनुमति दे देता हूं।		
22. मैं अपने छात्रों पर कोई नियम नहीं थोपना चाहता।		
23. मैं साल-दर-साल एक ही पाठ एवं तरीके का इस्तेमाल करता हूं। इस कारण कक्षा के लिए मुझे पहले से तैयारी करने की जरूरत नहीं पड़ती।		
24. फील्ड ट्रिप और विशेष परियोजना संभव नहीं है। मेरे पास उन्हें तैयार करने के लिए समय नहीं है।		
25. व्याख्यान देने की बजाय मैं फिल्म या स्लाइड शो दिखा सकता हूं।		
26. मेरे छात्र कमरे के आसपास और खिड़की के बाहर हमेशा देखते रहते हैं।		
27. अगर पाठ पहले समाप्त हो जाता है तो मेरे छात्र शांतिपूर्वक पढ़ते हैं या धीमे से बात करते हैं।		
28. मैं बिरले ही अपने छात्र को सजा देता हूं। अगर कोई छात्र होमवर्क देर से पूरा करता है तो यह मेरी समस्या नहीं है।		

सुगठित कक्षा के लिए अच्छी है, लेकिन उपलब्धि के लिए प्रेरित करने या व्यक्तिगत लक्ष्य तय करने को बढ़ावा देने में काम नहीं आएगी। इस स्थिति में छात्र कोई पहल करने को तैयार नहीं होंगे, क्योंकि वे खुद को अधिकारविहीन मान रहे होंगे।[8] उन्हें अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता की कीमत पर शिक्षक के आदेश का पालन करना होगा।

कथन 8-14 अधिकारपूर्ण शैली को दर्शाता है "आएं मिलकर काम करें।" हालांकि छात्रों के व्यवहार की सीमाएं बांधी हुई हैं, लेकिन नियम व्याख्यायित है और इन सीमाओं के अंदर रहने की स्वतंत्रता छात्रों को दी गई है। इस शैली को अपनाने वाला शिक्षक आत्मनिर्भर एवं सामाजिक रूप से दक्ष व्यवहार को प्रोत्साहित करता है। इसके अलावा वह छात्रों की ललक को जागृत करता है एवं ज्यादा हासिल करने के लिए प्रोत्साहित करता है। छात्रों का नेतृत्व करने की बजाय यदाकदा वह परियोजना के जरिए उन्हें निर्देशित कर सकता है।[9]

कथन 15-21 मुक्त शैली के बारे में बताता है: "आप कुछ भी कहें।" मुक्त शैली का शिक्षक छात्रों पर कुछ ही अपेक्षा या नियंत्रण थोपता है। शिक्षक छात्रों की चाहत एवं कामों को स्वीकार करता है और इस बात की बहुत कम संभावना रहती है कि वह उनकी मॉनिटरिंग करेगा। वह छात्रों की भावनाओं को आहत नहीं करता और छात्रों को ना कहने या उन पर कोई नियम लागू करने में उसे परेशानी महसूस होती है। हालांकि इस तरह के शिक्षक छात्रों के बीच लोकप्रिय हो सकते हैं, लेकिन उनकी अति कृपालु शैली छात्रों

[8]http://education.indiana.edu/cas/tt/v1i2/authoritarian.html
[9]http://education.indiana.edu/cas/tt/v1i2/authoritative.html

की 'सामाजिक सक्षमता एवं स्वनियंत्रण की कमी' से जुड़ी हुई है। शिक्षक जब इतने सहिष्णु होंगे तो छात्रों के लिए सामाजिक रूप से स्वीकार्य व्यवहार सीखने में मुश्किल होगी। उनसे बहुत कम अपेक्षाएं रखे जाने के कारण अक्सर छात्रों को कुछ पाने की प्रेरणा बहुत कम मिलती है।[10]

अंत में, कथन 22-28 उदासीन शैली की है: ''आप जो कुछ भी चाहें कर लें।'' उदासीन शिक्षक कक्षा में बहुत अधिक जुड़ाव नहीं रखता। ऐसा शिक्षक आमतौर पर छात्रों से कोई अपेक्षा नहीं रखता और अगर रखता भी है तो बहुत कम। वह ज्यादातर अनिच्छुक दिखता है। वह अक्सर ऐसा मान लेता है कि कक्षा की तैयारी के लिए कोई प्रयास करने की जरूरत नहीं। उसकी कक्षा में अनुशासन की भी कमी दिखती है। ऐसे परिवेश में छात्रों के पास संवाद का कोई अवसर नहीं होता। उनसे बहुत कम अपेक्षाएं किए जाने एवं अनुशासन का स्तर कम रहने के कारण छात्रों में कुछ पाने की ललक बहुत कम हो जाती है, उनमें स्वनियंत्रण की भी कमी हो जाती है।[11]

अगर अभी भी आप इस बात को लेकर निश्चिंत नहीं हैं कि कक्षा प्रबंधन की इन चारों शैलियों में से कौन-सी शैली सबसे अधिक आपके करीब है तो अपने किसी सहकर्मी, शिक्षण सहायक या पुराने छात्र से अपने ऊपर एक-दो दिन तक निगरानी रखने के लिए कहें। इसके बाद उन्हें लक्षणों एवं प्रबंधन शैली की उपरोक्त सूची पढ़ने और इनमें से कौन-सी शैली आपके सबसे करीब है, बताने को कहें। आपके छात्र सीखने के लिए कितने अधिक प्रेरित हैं, क्या इस पर प्रबंधन शैली का असर पड़ता है? क्या यह उनके व्यवहार को प्रभावित करती है?

आप अपने छात्रों को जिस तरह अनुशासित करते हैं और आपके प्रति उनकी जिस तरह की प्रतिक्रिया होती है, क्या उसे आपकी शैली प्रभावित करती है? क्या आपको लगता है कि इसमें किसी सुधार की गुंजाइश है? अपनी शैली या ऊपर लक्षणों में से किसी एक में बदलाव की कोशिश करें और तब इस बात पर गौर करें कि क्या आपके छात्र ज्यादा प्रेरित हुए और उन्हें पढ़ाना आसान हुआ। आपने जो बदलाव किया उसकी डायरी रखें । इस डायरी में यह भी दर्ज करें कि अब कक्षा की व्यवस्था करना आसान हुआ है या नहीं और आपके छात्र अच्छा व्यवहार कर रहे हैं या नहीं, उनका पारस्परिक बर्ताव कैसा है, इन सारी बातों को भी उस डायरी में लिखें।

सकारात्मक मजबूती उपलब्ध कराना

सकारात्मक व्यवहारों को पुरस्कृत कर गलत व्यवहारों को कम करने का तरीका है सकारात्मक अनुशासन। यह इस धारणा पर आधारित है कि जो व्यवहार पुरस्कृत होगा उसे दुहराया जाएगा। सकारात्मक अनुशासन का सबसे अहम हिस्सा छात्रों को उन व्यवहारों को सीखने में मदद करता है जो हम बड़ों की अपेक्षाओं को पूरा करते हैं, एवं सकारात्मक सामाजिक रिश्तों को बढ़ाने में प्रभावी है। यह उनमें आत्मानुशासन की भावना विकसित करने में मदद करता है जिसके कारण सकारात्मक स्व-सम्मान पैदा होता है। आप जिस व्यवहार को पसंद करते हैं और प्रोत्साहित करना चाहते हैं, उसके बारे में छात्रों को जानकारी होनी चाहिए। इन व्यवहारों के बारे में बताने एवं मजबूत करने के लिए आपको गहन प्रयास करना होगा। अपने छात्रों को सकारात्मक व्यवहारों के बारे में सीखने के लिए मदद के तौर पर आप जिन तरीकों को अपना सकते हैं उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:

सकारात्मक बातें कहें: ''देखो, तुमने कितना सही जवाब दिया है। आओ, हम कोशिश करें कि अगली बार सही जवाबों की संख्या और अधिक हो जाए!''

सावधानीपूर्वक सुनें और उन्हें अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए शब्दों का इस्तेमाल सीखने में मदद करें, कोई नकारात्मक कार्रवाई नहीं करें।

अपने छात्रों को विकल्प चुनने का अवसर प्रदान करें, और उनके विकल्पों का संभावित परिणाम जानने में उन्हें मदद करें।

उभर रहे वांछनीय व्यवहारों की सतत प्रशंसा एवं मामूली गलत हरकतों की अनदेखी कर मजबूती प्रदान करें।

मॉडल तैयार करें सुव्यवस्थित, संभावित व्यवहारों, सम्मानजनक संवाद एवं असहमतियों को हल करने की साझा रणनीति का।

[10]http://education.indiana.edu/cas/tt/v1i2/laissez.html
[11]http://education.indiana.edu/cas/tt/v1i2/indifferent.html

सही हाव-भाव का इस्तेमाल करें: सिर हिलाएं, मुस्कुराएं एवं छात्रों को सीधे देखें।

अपने शरीर को झुकाएं: विशेष रूप से छोटे बच्चों के लिए झुकें, घुटना मोड़ लें या उनके बराबर होकर बैठें।

परिसर को पुनर्व्यवस्थित करें: गलत व्यवहार के लिए उकसाने वाले सामानों को हटाएं, उदाहरण के लिए अगर शिक्षण कार्य में मदद के लिए खेल या खिलौनों का इस्तेमाल होता है तो अपना काम समाप्त होने पर उन्हें हटा दें।

किसी व्यवहार को सकारात्मक तरीके से अनुप्रेषित करें: कोई छात्र क्लासरूम में फुटबॉल उछालता है तो आप उससे कहें : "तुम खेल के मैदान में अपना फुटबॉल उछाल सकते हो, जहां खेलने के लिए ज्यादा जगह है।"

सार रूप में, भरोसा है कि आपने इस खंड से बहुत कुछ सीखा है एवं अपनी कक्षा में कुछ नया करने का निर्णय लिया है। हमने पाया है कि एक प्रभावी तरीके से व्यवस्थित कक्षा, सकारात्मक आचरणों को सृजित एवं सहयोग करने वाली कक्षा, वह है जिसमें

1. आप जानें कि आप क्या चाहते हैं और क्या नहीं चाहते।
2. आप अपने बच्चों को दिखाएं एवं बताएं कि आप क्या चाहते हैं।
3. आप जो कुछ चाहते हैं वह मिल जाए तो इसे स्वीकार करें।
4. अगर आपको कुछ दूसरी चीज मिल जाए तो तुरंत, सही तरीके से और सकारात्मक तरीके से हरकत में आएं।

हालांकि इस प्रक्रिया में आपको सुनिश्चित करना होगा

1. आपकी अपेक्षाएं स्पष्ट हों।
2. पढ़ाई छात्रों के लिए रोचक हो।
3. जो कुछ पढ़ाया जा रहा है उसमें आपके छात्र उद्देश्य एवं उपयोगिता देख रहे हों।
4. शिक्षा का संबंध छात्रों की अवधारणा एवं दक्षता से हो तथा वह उनके दैनिक जीवन के लिए अर्थपूर्ण हो ।
5. पढ़ाने का आपका तरीका विविधतापूर्ण हो। अगर विषय रोचक भी होगा, लेकिन आप लगातार एक ही तरीके से पढ़ाते रहेंगे तो छात्र ऊब जाएंगे।

अपने छात्रों में सकारात्मक व्यवहार विकसित करने वाला अनुकूल परिवेश बनाने के लिए आप जो कुछ तरीका अपना सकते हैं उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं[12]

1. अपने छात्रों एवं खुद के लिए व्यवहारगत उच्च अपेक्षाएं रखें एवं उसे संप्रेषित करें।
2. स्पष्ट नियम एवं तरीका बनाएं एवं छात्रों को बताएं कि उनका पालन किस तरह करना है, प्राइमरी स्तर के छात्रों को अभ्यास करने तथा पाठ दुहराने का विशेष तौर पर निर्देश दें।
3. छात्रों को स्पष्ट रूप से उचित व्यवहार एवं दुर्व्यव्यहार के परिणाम बताएं।
4. स्कूल के पहले ही दिन से कक्षा के नियमों को तत्परता के साथ, लगातार एवं समान रूप से लागू करें।
5. छात्रों के बीच आत्मानुशासन की भावना जागृत करने के लिए काम करें, आत्मसमीक्षा का कौशल सिखाने में समय दें।
6. पढ़ाने की तेज रफ्तार बनाए रखें एवं गतिविधियां बदलने के बीच शांति बनाए रखें।
7. कक्षा की गतिविधियों को मॉनिटर करें एवं छात्रों को फीडबैक दें तथा उनके व्यवहार में सुधार के लिए मदद करें।
8. छात्रों के लिए उनकी पढ़ाई एवं सामाजिक व्यवहार में सफलता अनुभव करने का अवसर सृजित करें।
9. वैसे छात्रों की पहचान करें जिनमें स्वाभिमान की कमी दिखती हो तथा उन्हें बेहतर एवं आत्मविश्वासी बनाने में मदद करें।
10. सहयोगी शिक्षण समूह का इस्तेमाल करें, जैसा उपयुक्त हो।
11. जब उपयुक्त हो, छात्रों की रुचि बढ़ाने या कक्षा का तनाव कम करने के लिए हास्य का इस्तेमाल करें।
12. जब पढ़ाई का काम चल रहा हो उस वक्त ध्यान खींचने वाले सामानों को आंखों से ओझल कर दें।
13. अपने छात्रों, उनके अभिभावकों तथा खुद के लिए कक्षा को सुविधाजनक, आकर्षक एवं स्वागतयोग्य बनाएं। ❑

[12]Cotton, Katherine. Schoolwide and Classroom Discipline. School Improvement Research Series. Iclose-Up #9. http://www.nwrel.org/scpd/sirs/5/cu9.html [accessed online on 10/6/2005]

लेखक परिचय

- संजय कुमार एक शोधार्थी, सामाजिक कार्यकर्ता और डॉक्यूमेंटरी फिल्म निर्माता हैं। इनका मूल विषय शिक्षा, वासभूमि का अधिकार और शोषित समूह की संस्कृति और टिकाऊ विकास है। संजय कुमार *स्कूल एडुकेशन, प्लूरलीज्म एण्ड मार्जिनालिटी*, ऑरिएन्ट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली, 2012, *इन्ट्रोगेटिव डेवलपमेंट, इनसाइट् फ्रॉम द मारजिन्स*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2010 और *असर्टिंग वॉइसेज : चेजिंग कल्चर, आइडेन्टीटी एण्ड लाइवलीहुड ऑफ द मुसहर इन गैंगेटिक प्लेन्स*, देशकाल पब्लिकेशन, 2002 पुस्तकों के सह संपादक हैं। ये 'ए स्टेट्स रिपोर्ट ऑन प्राइमरी एडुकेशन इन बिहार', की टीम के एक अभिन्न सदस्य हैं। साथ ही एक शोध आधारित नागरिक संगठन देशकाल सोसाइटी के संस्थापक सदस्य हैं।

- पी. डी. सिंह पिछले दो दशक से खेतीहर संरचना तथा प्राथमिक शिक्षा के सवाल पर शोधरत हैं। इन्होंने शिक्षा शास्त्र और समावेशी शिक्षा से जुड़े महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर रिपोर्ट तथा वैचारिक लेखन किया है। सम्प्रति ये जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय स्थित डॉ. बी. आर. अम्बेडकर चेयर में शोध अधिकारी हैं।

- डा. ज्ञानदेव मणि त्रिपाठी ने दिल्ली विश्वविद्यालय से शिक्षा में अपना पीएचडी कार्य पूरा किया। ये शिक्षा विषय के अध्यापन और प्रशिक्षण कार्यक्रम के साथ नीति बनाने वाली संस्थाएं एस.सी.ई.आर.टी., बिहार, एनसीईआरटी, यूनीसेफ, न्यूपा आदि संस्थाओं से जुड़े हैं। पिछले डेढ़ दशक से ये बिहार में पाठ्यक्रम एवं पाठ्य पुस्तक निर्माण, शिक्षकों के लिए मार्गदर्शिका का निर्माण तथा शैक्षिक स्रोत सामग्री बनाने में इनकी भूमिका महत्वपूर्ण है। ये शिक्षा के इतिहास, शिक्षा के माध्यम और शिक्षा शास्त्र के महत्वपूर्ण सवालों पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों तथा समाचार पत्रों में लिखते रहे हैं। सम्प्रति ये मैत्रेयी कॉलेज ऑफ एडुकेशन एंड मैनेजमेंट, हाजीपुर, बिहार में प्राचार्य हैं।

- प्रो. नीता कुमार ने यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो से इतिहास में अपना पी-एच.डी कार्य पूरा किया और अन्य जगहों के अलावा यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो, ब्राउन यूनिवर्सिटी एवं यूनिवर्सिटी मिशिगन में अध्यापन कार्य किया। वर्तमान में ये क्लेयरमॉट मैक केना कॉलेज, क्लेयरमॉट, कैलिफोर्निया में दक्षिण एशियाई इतिहास की ब्राउन फेमली चेयर हैं। कुमार ने इतिहास के साथ मानवशास्त्र का अध्ययन किया है तथा दोनों ही विषयों में इन्होंने शोध किया है एवं इनकी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। उन्होंने अपने दृष्टिकोण में महिला एवं जेंडर अध्ययन, साहित्यिक आलोचना, एवं अभिनय अध्ययन को शामिल किया है। नीता कुमार ने भारत में कई जगह शिक्षा, लोकतंत्र, आधुनिकता, एवं बच्चों पर अपने शोधों को प्रस्तुत किया है और यह काम निरंतर जारी रखी हुई हैं। उनकी प्रकाशित पुस्तकों में *द पॉलिटिक्स ऑफ जेंडर, कम्यूनिटी एंड मॉडर्निटी: एसेज ऑन एड्यूकेशन*, ऑक्सफोर्ड, दिल्ली 2007, *लेशन्स फ्रॉम स्कूल्स: ए हिस्ट्री ऑफ एड्यूकेशन इन बनारस*, सेज, नई दिल्ली 2000 शामिल है। नीता कुमार 1990 से गैर मुनाफा वाली स्वयंसेवी संस्था निर्माण से जुड़ी हुई हैं, जो वाराणसी, भारत में शिक्षा एवं कला के क्षेत्र में काम करती है।

देशकाल समाज के निचले स्तर पर जिंदगी बसर करने वाले दलितों, महिलाओं और असंगठित मजदूरों के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तन को उत्प्रेरित करने वाला एक ज्ञान आधारित एक्टविस्ट नागरिक संगठन है। यह संगठन इन समूहों के बीच यह कार्य शोध, दस्तावेजीकरण और एडवोकेसी के माध्यम से करता है।

देशकाल इन समूहों के बीच राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य में जनपक्षीय नजरिए से अंतर्संबंध बनाता है। इस प्रक्रिया मेंयह संगठन जनपक्षीय ज्ञान और नीतियों से जमीनी स्तर के मुद्दों व सवालों को भी अंतर्संबंधित करता है।

देशकाल मानता है कि किसी समूह के बीच निरंतर परिवर्तन की प्रक्रिया को प्रेरित करने के लिए उसके साथ स्थायी सहकार जरूरी है। दरअसल इस तरह के सहकार से ही देशकाल को वह ऊर्जा मिलती रही है जिससे वह जमीनी स्तर के परिवर्तन का एक सशक्त वाहक बनकर सामने आया है।

हमारा अधिकार • हमारी आवाज़
PACS
Our rights • Our voice

पैक्स कार्यक्रम यू. के. सरकार के अन्तर्राष्ट्रीय विकास विभाग के सहयोग से संचालित कार्यक्रम है जिसके तहत भारत में नागर समाज संगठनों के माध्यम से सामाजिक बहिष्करण व भेदभाव के मुद्दों को सामने लाने और उन्हें दूर करने का प्रयास किया जा रहा है। पैक्स कार्यक्रम के अन्तर्गत आजीविका के अधिकार व मूलभूत सेवाओं के अधिकार पर केन्द्रित होकर देश के सात राज्यों के 90 निर्धनतम जिलों में कुल 225 स्वयंसेवी संस्थाओं के साथ मिल कर काम किया जा रहा है। शिक्षा के अधिकार के अन्तर्गत समावेशी शिक्षा एक महत्वपूर्ण हस्तक्षेप है। देशकाल सोसाइटी के द्वारा समावेशी शिक्षा पर प्रकाशित प्रस्तुत पुस्तक इसी पहल का एक हिस्सा है। आशा है कि यह पुस्तक वंचित समुदायों के शिक्षा अधिकार पर समझ बनाने व पहलकदमियों के लिए प्रेरित करेगी।

देशकाल सोसाइटी
205, द्वितीय तल, इंदिरा विहार, दिल्ली-110009
टेलीफैक्सः 91-11-27654895
ईमेलः deshkal@gmail.com
www.deshkalindia.com